अध्याय तेइसवां

रामग्राम स्तूप

कापिल वस्तु से पांच योजन पूर्व में रामग्राम नामक एक राज्य है। इस देश के राजा को बुद्धदेव के शरीर की भस्म हिस्से में आई थी। उसी भस्म पर उसने यह स्तूप बनवाया था। इसके किनारे पर एक नाला है जिसमें एक दैत्य रहता है। वही इस स्तूप की देख रेख रखता है।

महाराज अशोक ने जब उन आठ स्तूपों को तोड़ा जिनमें बुद्धदेव के शरीर की भस्म रखी थी और उस भस्म पर ८४००० स्तूप बनवाये तब वह इस स्तूप को भी तोड़ना चाहता था। परन्तु इस स्तूप का सरक्षक दैत्य प्रकट हुआ और उसने अशोक को वे अप्राप्त रत्न और द्रव्य बतलाये जिनसे वह उसका पूजन करता था। अशोक उसको देख कर विस्मित हुआ। दैत्य ने कहा कि इन द्रव्यों की अपेक्षा यदि आप और भी अच्छे द्रव्यों से इसका पूजन कर सके हैं तो मुझे इस स्तूप के तोड़े जाने में कुछ भी आपत्ति नहीं है। परन्तु अशोक ने कहा कि मैं ऐसा करने में असमर्थ हूं। वह लज्जित हो कर चला गया और यह स्तूप आज तक उसी दशा में वर्तमान है।

समय के फेर से यह भूमि उजाड़ हो गई। उस स्थान को स्वच्छ और पवित्र रखने के लिये भी कोई मनुष्य नहीं मिला। परन्तु हाथियों का एक झुंड अपनी २ सूंडों में पानी भर कर लाते और यहां नित्य चढ़ाते थे। वे नानाप्रकार के पुष्प और द्रव्य भी यहां लाकर चढ़ाते थे। एक समय एक श्रद्धालु यात्री इस स्तूप के दर्शन करने के लिये आया। हाथियों के झुंड को श्रद्धा और भक्ति से यह सब कृत्य करते देख वह विस्मित हो गया। उसने सोचा कि यहां कोई पुजारी के न होने के कारण इन हाथियों को इतना कष्ट उठाना पड़ता है। उसने अपनी प्रतिज्ञाओं से मुक्त होने की प्राथना की और तत्क्षण वह श्रमणेर बन गया।

फाहियान और हुएनसंग

की

भारत यात्रा

(बौद्ध भारत में आये हुये चीनी परिव्राजक फाहियांग)
और हुएनसंग का भ्रमण वृतांत और पांचवीं व
सातवीं शताब्दीके भारत वर्ष की सामाजिक
अथवा धार्मिक स्थिति का शिक्षाप्रद
एवं सत्य एतहासिक वर्णन.

लेखक—ब्रजमोहनलाल वर्म्मा बी. ए.

प्रकाशक

रामावतार शुक्ल
हिन्दी ग्रंथ प्रसारक समिति
छिन्दवाड़ा सी. पी.

बाबू मोतीलाल वर्म्मा मैनेजर—और मुं० फज़ल हुसैन
प्रबंध से सेन्ट्रल ला. मशीन प्रेस छिन्दवाड़ा में
छपकर तैयार हुआ.

पौष १९७४
जनवरी १९१८ ईस्वी

प्रथम संस्करण] [मूल्य १)

द्वितीय खंड.

हुएनसंग

प्रसिद्ध यात्री हुएनसंग ने भारत वर्ष की धर्म यात्रा की। चीन से वह सन ६२९-३० ई० में रवाना हुआ था। और यहां वह लगभग १५ वर्ष रहा। और यहां के प्रत्येक प्रसिद्ध स्थान का पर्य्यटन किया।

फाहियान ने कभी यह लिखने की फिकर न की कि यहां कौनसा प्रधान साम्राट राज्य करता था। सम्भव है कि उस समय बौद्धधर्म के प्रति राजाओं की उतनी अच्छी दृष्टि न हो। परन्तु हुएनसंग बौद्धराजा श्री हर्ष के साथ रहा। उस के आदर का पात्र हुआ। इस लिये उस ने अपने पर्य्यटन का वृतांत लिखते हुये श्री हर्ष का (और कुमारराज का) वर्णन किया है। श्री हर्ष की राज्यप्रणाली का भी वह उल्लेख करता है। उस समय की शासन प्रणाली उदार थी। श्री हर्ष अपने विस्तृत राज्य का निरीक्षण स्वयं करता था। वर्षा ऋतु के सिवाय वह आठ महीने तक एक स्थान से दूसरे स्थान को जाता और अपनी प्रजा की उन्नति में दत्तचित्त रहता था। जहां वह जाता, अपराधियों को दंड देता और विद्वानों का सत्कार करता था। उन की सहायता करता था। राज्य की आमदनी जमीन की लगान से ही वसूल होती थी। भूमि की उपज का छटवां हिस्सा राज-कोष में जाता था। राजकर्मचारियों को उन के कार्य के उपलक्ष में जमीन मुफ्त दी जाती थी। मजदूरों को उन का मेहनताना मिलता था। बेगार की प्रथा प्रचलित नहीं थी। प्रजा सन्तुष्ट और सुखी थी। भयानक अपराध कम होते थे।

हुएनसंग को कई बार डाकुओं का सामना करना पड़ा। इस से मालूम होता है कि सड़क और नदी के मार्ग सुरक्षित न थे। दंड प्रणाली फाहियान के समय से कड़ी थी। कैदियों पर सख़्ती की जाती थी। माता पिता विषयक और सख्त अपराधों के लिये नाक, कान या हाथ पैर काट लिये जाते थे। परन्तु कभी २ इस प्रकार की सजा के एवज में देश निकाले की सजा दी जाती थी। छोटे २ अपराधों में जुरमाना होता है। अपने को निर्दोष बताने के लिये अग्नि को हाथ में उठाना, उस पर चलना, पानी में कूदना या जहर खाकर भी बचे रहने की प्राचीन प्रथायें भी बहुत अधिक प्रचलित थीं।

कुछ कर्मचारी राज्य की ओर से इस कार्य के लिये नियुक्त थे। वे देश भर की अच्छी और बुरी घटनाओं का लेखा रखते थे। इन लेखों से शासन पत्र के अंकित किये जाने के समय बड़ी सहायता मिलती थी, परन्तु अभी तक ऐसे एक भी लेख का पता नहीं लगा है।

श्री हर्ष के पास विशाल सेना थी। उसी के सहारे उसने समस्त उत्तरीय भारत को विजय किया था। इसके राज्य में शिक्षा का अच्छा प्रचार था। विशेष कर ब्राह्मणों और बौद्ध भिक्षुओं में शिक्षितों की संख्या अधिक थी। श्री हर्ष वर्द्धन धन आदि से विद्वानों का सत्कार करता था। वह स्वयं भी संस्कृत का अच्छा विद्वान और लेखक था। नागानन्द, रत्नावली और प्रियदर्शिका नामक तीन नाटक उसी के बनाये हुये प्रसिद्ध हैं।

श्री हर्ष शिव सूर्य और बुद्ध तीनों भिन्न २ सम्प्रदायों की आज्ञाओं का पालन करने में किसी प्रकार का विरोध नहीं समझते थे। उनके पूर्वज शैव और सूर्योपासक थे। बहुत काल तक श्री हर्ष ने भी तीनों धर्मों का पालन साथ २ किया, परन्तु उनकी विशेष प्रवृत्ति बौद्ध धर्म की तरफ़ थी। उनकी बहिन और बड़े भाई राज्यवर्द्धन दोनों कट्टर बौद्ध थे। इन्हीं के जीवन से हम देश के धर्म की स्थिति का पता लगा सक्ते हैं। देश भर में बौद्ध और पौराणिक धर्मों का साथ २ पालन होता था। न एक दूसरे में विरोध था न धार्मिक कलह। जैनधर्म के प्रति भी सब की उदार दृष्टि थी।

भूमिका

उन यात्रियों में जो समय २ पर भारत वर्ष में आये फाहियान और हुएनसंग धार्मिक जगत में अधिक प्रसिद्ध हैं। वे भारत वर्ष का पर्य्यटन करने नहीं आये थे, न यहां पर अपने देश का व्यवसाय बढ़ाने के हेतु, परन्तु वे पवित्र मातृभूमि का तीर्थ करने के लिये सैकड़ों, हजारों मीलों की कठिन यात्रा समाप्त करके आये थे। उस समय हमारा देश स्वतंत्र था। राजा और प्रजा दोनों एक ही धर्म के अनुयायी थे। भगवान बुद्धदेव का बताया हुआ आर्य्यधर्म यद्यपि जर्जर अवस्था में था, और उस समय केवल बाहरी आडम्बरों की ही प्रधानता थी, परन्तु तब भी उसकी कमजोरी एकाएक प्रतीत नहीं होती थी। जिन उद्देशों से श्री बुद्धदेव ने अपने उपदेशों का प्रचार किया था, सर्वथा नहीं तो अधिकांश उनमें उनको सफलता हुई थी। वेदों के कर्म कांड के विरुद्ध परन्तु उसी के ज्ञानमार्ग की पुष्टि के हेतु और उसका सर्व साधारण में प्रचार करने के लिये ही उन्होंने धर्म का उपदेश दिया था। उस समय जब कि उनका जन्म हुआ था सर्वसाधारण और श्रेष्ठ विद्वान ब्राह्मण सब बाह्य जगत के आडम्बरों में और सुख व स्वर्ग की प्राप्ति के लिये यज्ञादिक के करने में ही जीवन का यथार्थ उद्देश समझते थे। इसके विपरीत श्री बुद्धदेव ने अन्तर्जगत की ओर विद्वान् और साधारण दोनों की मनो वृत्ति को फेरा। जिस भारत वर्ष का जीवन प्रवाह उस समय कर्मकांड और नास्तिकता अथवा अज्ञान की ओर बह रहा था उसको पुनः उन्होंने उपनिषद और वेदों के ज्ञानकांड की ओर लाया। उपनिषद और वेदांत जो कि थोड़े से इने गिने मनुष्यों की सम्पत्ति समझी जाती थी और जिसे कठिन अथवा दुर्गम बतला कर लोग हताश हो छोड़ बैठे थे उसकी ओर लगभग १½ हजार वर्ष तक, पन्द्रह सोलह सौ वर्ष तक उन्होंने भारत वर्ष की नाव को खेया। सर्वसाधारण निराश्रित कर्म करने की अपेक्षा यज्ञ पूजादिक का करना सुगम, सुखकर और स्वर्ग का देने वाला समझते थे। ज्ञान की प्राप्ति में उदासीनता प्रतीत होती थी। इसके विपरीत मृतवत् कर्म काण्ड का यथोचित पालन करने से उन्हें स्वर्ग की प्राप्ति की उम्मीद थी। संसार में उनको वाह २ और नामवरी प्राप्त होती थी। ज्ञान और वैराग्य केवल मौके की

चीखें थीं। स्वार्थरत् और अज्ञानग्रसित हिन्दुओं की दशा अत्यन्त शोचनीय थी।

जब समाज का हृदय इतना संकीर्ण हो तब वह कदापि श्रेष्ठ तत्वों का अनुकरण नहीं कर सक्ता। आर्य्यों के तीनों श्रेष्ठ वर्ण, ब्राह्मण, क्षत्री और वैश्य कर्मकाण्ड के यज्ञ कुंड में झूठे स्वर्गीय संसारिक सुख के लिये अपने सत्य आत्मा की आहुति दे रहे थे। आत्मोन्नति का मार्ग वे भूल बैठे थे। प्रकृति की पूजा और जड़वाद की महत्ता चारों ओर अपना प्रभुत्व फैला रही थी। मनुष्य के झूठे संकल्प ने झूठे कृत्रिम स्वर्ग की कल्पना बना रखी थी। इसी की प्राप्ति के लिये **आत्मा** का सर्वव्यापी और आर्य्यों का अत्यन्त प्रिय मार्ग हम भूल गये थे। केवल थोड़े मनुष्य ही आत्मा, परमात्मा और संसार के न हल होने वाले सिद्धान्तों का अन्वेषण कर रहे थे। उनका विस्तृत हृदय उनकी ज्ञान पिपासा, वाह्य कर्मों के करने से सन्तुष्ट न होती थी। परन्तु उनकी संख्या कम थी।

अधिकांश हिन्दू इस मार्ग से अपरिचित थे। संसारिक अथवा व्यवहारिक धर्म ही उनके लिये सब कुछ था। बिचारे शूद्रों की दशा और भी शोचनीय थी। सम्भवतः वे आर्य्यों द्वारा जीते हुये मनुष्य थे। सेवा ही जीती हुई जाति का परमधर्म है। उनको यही बतलाया गया था। स्वर्ग एवं सुख जो अन्य श्रेष्ठ वर्णों को अज्ञाधिक कर्मों के शुभ परिणाम से मिल सक्ता है वह शूद्रों को केवल दासवृत्तिधारण करने से प्राप्त हो सक्ता था। तीनों श्रेष्ठ जातियों की संसारिक आवश्यक्ताओं का पूरा करना ही उनको परमात्मा की आज्ञा के समान सब कुछ था। सदा अपनी दृष्टि, अपना हृदय, अपना मन, और अपनी आत्मशक्ति सेवा में लगाये रखो। सदा सेवक बने रहो। आर्य्यों द्वारा जीती हुई जाति के लिये यही सदमार्ग था।

चाहे यह धर्म की आज्ञा न हो, चाहे वेदों में ब्राह्मणादिक तीनों वर्णों ने इनको ज्ञान की प्राप्ति से वंचित न किया हो, चाहे शूद्रों के अधिकार वेदों में सुरक्षित हों; या वैदिक दृष्टि से सब लोगों को ज्ञान मार्ग के पालन करने की आज्ञा हो अथवा "अहिंसा परमो धर्मः" की पवित्र ध्वनि वेदों और ऋषिप्रणीत शास्त्रों में अंकित हो; परन्तु जिस समय श्री

बुद्धदेव का जन्म हुआ उस समय धार्मिक स्थिति इनसे कहीं विपरीत थी। समाज नास्तिकता और अज्ञान के दुसह दलदल में फंसा हुआ था। धर्म की आज्ञा की आड़ में लाखों पशुओं का वध निःसन्देह होता था। और उस समय के राजाओं और धनाढ़्य पुरुषों के द्वार पर सैकड़ों पशु यज्ञ में मारे जाने के लिये बंधे रहते थे।

यद्यपि ज्ञान और वैराग्य के उपासक इस कार्य के विरुद्ध थे और संसार से तंग आकर एकांत सेवन करते थे तो भी उनमें यह शक्ति न थी; उनके हृदय में यह ज़ोर न था कि एकाएक वेदों के नाम पर होने वाले असंख्यों अपराधों के विरुद्ध अपनी आवाज़ उठा सकें। इस कार्य के करने के लिये अपार साहस की ज़रूरत थी। इसे केवल वही मनुष्य पूर्ण कर सकता था जिसमें ज्ञान की शक्ति हो। जिसके नैतिक बल अथवा सत्याग्रह की शक्ति को संसार की कोई भी विपरीत शक्ति न रोक सक्ती हो वही मनुष्य इस कार्य में सफल हो सक्ता था। जिसने अपनी आत्मा पर विजय पाया हो, जो पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर चुका हो; जिसका हृदय प्राणिमात्र की अज्ञानता और उनके अवर्णनीय दुःखों से शोकातुर हो गया हो; जिसका हृदय अनन्त समुद्र के समान इतना विस्तृत हो कि केवल संसार ही नहीं वरन समस्त विश्व उसमें एक साधारण जल विन्दु के समान समा जावे; जो इतनी भारी जिम्मेदारी को, उत्तरदायत्व को पूरा करने का आत्मिक बल रखता हो वही मनुष्य संसार का यथार्थ उपकार कर सक्ता है। वही अपने आत्मा को विस्तृत कर मनुष्य के हृदय में छुपी हुई अनन्त शक्ति को स्फुरित कर सक्ता है। और अपने अन्दर विश्व को अनुभव कर उसके संचित कुसंस्कारों को समूल नष्ट कर सक्ता है। यह श्रेष्ठ कार्य्य प्रत्येक देश में आवश्यकतानुसार होता है। और उस समय भारतवर्ष में यह कार्य भगवान बुद्धदेव द्वारा पूर्ण हो सका। श्री बुद्धदेव उत्तमता पूर्वक इस कार्य को पूरा कर सके। प्रायः १६०० वर्ष तक भारतवर्ष ने सुख, सम्पत्ति, ज्ञान और स्वतंत्रता का भोग किया। धार्मिक दृष्टि से उन्होंने संसार का राज्य किया। राजनैतिक तराजू में भी वे अपना पलड़ा भारी रख सके। इधर एशिया खंड में ही नहीं वरन योरुप तक में उनके साधु और यति

गण धर्म प्रचार करने के हेतु स्वतंत्र भ्रमण करते थे। अमेरिका वाह्य भारत को बहुत प्राचीन काल से परिचित था। ईसाईधर्म भी अपनी अधिकांश शिक्षा में एवं प्रचार करने की प्रणाली में बौद्धधर्म का कृतज्ञ है। उधर राजनैतिक जगत में ग्रीस और रोम में हमारे राजप्रतिनिधि वर्तमान थे। प्राचीन मिसर देश से हमारा घनिष्ट सम्बंध था। जब हम को राज्य करने का अवसर मिला तब हमने इस कार्य का सम्पादन वैसीही योग्यता के साथ किया जैसा कि कोई वर्तमान स्वतंत्र और उन्नतशील राज्य कर सक्ता है। चन्द्रगुप्त, अशोक, शिलादित्य, विक्रमादित्य, कनिष्क आदि महाराजाओं का नाम किसी से छिपा नहीं है। स्वतंत्रता के दिनों में कोई भी विदेशी या देशी हमारी राज्य प्रणाली से असन्तुष्ट न था। यदि वैदिक काल में या बुद्धदेव के कुछ समय पूर्व शूद्रों और वैश्यों में धर्म और ज्ञान का अभाव था तो यह न्यूनता भी बौद्धधर्म ने पूरी कर दी थी। बौद्धभारत के मध्यान्ह काल में कभी किसी पर अत्याचार नहीं हुये।

प्रजा में अधिकांश लोग शिक्षित थे। स्त्रियों में शिक्षा का यहां तक प्रचार हो गया था कि वे संसारिक कार्यों में दक्ष होने के अतरिक्त साधु वृत्ति भी धारण कर सक्ती थीं। संसार की सभ्य जातियों से हमारा वर्ताव वराबरी का था। देश का शासन आदर्श था। धर्म, विद्या, व्यापार, कला कौशल वाणिज्य, समुद्रयात्रा, शस्त्रविद्या एवं राष्ट्रीयता के लिहाज से और आदर्श सामाजिक संगठन की दृष्टि से इस देश का दूसरा सानी न था। राष्ट्रीय और सामाजिक वृत्ति की उदारता वर्तमान काल की औदार्य्य वृत्ति को शरमाती है। विदेश में हम लोग आदर के पात्र थे। हम भी विदेशियों का सन्मान करते थे। इस डर से नहीं, कि वे हम से मजबूत हैं और हमारा अनिष्ट कर सक्ते हैं, परन्तु कर्तव्यवश हम ऐसा करते थे। विश्वबन्धुत्व के लिहाज से हम उन को अपने देश का अतिथि समझते थे। शक्ति रखते हुये भी हम ने किसी के अधिकारों को हड़प करने का विचार तक न किया। इसके विपरीत कि हम उन से कुछ लेते, हम ने एशिया और योरुप के निवासियों में धर्म और ज्ञान का विस्तार किया। सभ्य जाति के जो कर्तव्य हैं उन्हें हमने

सहर्ष और निस्स्वार्थ रीति से पूरा किया। यही कारण है कि बौद्ध भारत का इतिहास मुझे इतना प्रिय है। कर्तव्य परायण बौद्धों का वर्णन पढ़ते २ एकाएक श्रद्धा उत्पन्न हो जाती है। संसार को नश्वर अथवा क्षणिक समझते हुये भी उनको उससे निराशा—उदासीनता न हुई। यह कम आश्चर्य्य की बात न थी।

परन्तु समय एक सा नहीं रहता। जवान मनुष्य यह कभी नहीं चाहता कि उस तक बुढ़ापा आसके। परन्तु वह आकर उसको कमजोर अवश्य करता है। यह संसार का चक्र है। कार्य और कारण तो अवश्य होते हैं परन्तु उन्नति के साथ अधोगति भी जरूर होती है। यही दशा बौद्ध जगत की हुई। जिन बाह्य पदार्थों और स्वार्थ के एवं अज्ञान के विरुद्ध भगवान बुद्ध ने अपनी आवाज उठाई थी उनके विरुद्ध स्वयं बौद्धों में भी आडम्बरों की पूजा होने लगी। श्री बुद्धदेव की आज्ञा के विरुद्ध ही उनकी पूजाही नहीं वरन उनके नश्वर शरीर की पूजा होने लगी। एशिया खंड में बौद्धधर्म का विस्तार तो अवश्य हुआ परन्तु साथ २ वहां के असभ्य लोगों के संसर्ग से एवं कुछ निज की कमजोरी से बौद्धधर्म अपने श्रेष्ठ सिद्धान्तों से प्रातिकूल रूप धारण करने लगा। **यही बौद्धधर्म के ह्रास का मुख्य कारण है**। धार्मिक ह्रास के साथ २ भारत वर्ष का समाज नष्ट भृष्ट होगया। जब तक स्वयं उस धर्म में जीवित रहने की शक्ति थी तब तक किसी के लाख प्रयत्न करने पर भी उसको जरा भी हानि नहीं पहुंची। फाहियान और हुएनसंग के समय वह अपनी अधोगति पर था। परन्तु आडम्बरों से आच्छादित कुरीतियां सर्वप्रिय होरहीं थीं। **संघ** इस समय शितिल हो चुका था। बौद्धधर्म को जीवित रखने की शक्ति केवल साधुओं, भिक्षुओं, यतियों के संघ में थी। उनकी संस्था बिगड़ चुकी थी। विदेशियों की रीति-व रसम का बौद्धधर्म में समावेश हो चुका था। केवल श्रद्धाही धर्म की अमूल्य चीज शेष रह गई परन्तु श्रद्धा अकेले समाज को या धर्म को जीवित नहीं रख सकी। धर्म के यथार्थ सिद्धांतों पर अज्ञान का रंग चढ़ चुका था। उसकी अधिक वृद्धि होने लगी। यथार्थ सिद्धांत भ्रममूलक मालूम होने लगे।

इसी अवसर पर श्रीमद् शंकराचार्य्य का जन्म हुआ। और **बौद्धधर्म**

की जर्जर अवस्था ही पर पौराणिक हिन्दूधर्म की नींव रखी गई। श्री शंकर का वेदांत निस्सन्देह मूल सिद्धांतों की रक्षा करने में समर्थ था। वेदों के ज्ञान कांड, उपनिषदों की खोज और बौद्धधर्म इन तीनों के गहन सिद्धान्तों का संयुक्त विकाश ही वेदांत में सम्मिलित हैं। वेदांत इसी कारण सर्वव्यापी धर्म है। मनुष्य और ब्रह्म की एकता का वह प्रतिपादक हैं। एकही तत्त्व उसके मतानुसार शेष रह जाता है। ईश्वर, आत्मा, और जगत सब ब्रह्म के रुपान्तार हैं। संसार के प्रति, मानव जाति के प्रति, समस्त विश्व के प्रति वह निराश्रित कर्म करना सिखलाता है। संसार के आत्मिक विकास की, मानव जाति के तत्व विज्ञान के पूर्ण विकास की यह अन्तिम सीढ़ी है। वेदांत का ज्ञान सदा निश्चल ज्ञान है। यह मनुष्य की अन्तिम उन्नति का पद निर्वाण है। वेदांत की कसोटी पर धर्म, कर्म, ज्ञान, उपासना, भक्ति और श्रद्धा सब अपना २ यथार्थ रंग बतला जाते हैं। संसार के भिन्न २ धर्मों की यहां ही सच्ची परख हो सक्ती है। ईश्वर, परमात्मा, आत्मा और संसार की हस्ती इसी वेदान्त की सत्यता पर निर्भर है। विना वेदान्त के रंग में रंगे सब धर्म कर्म बालकों के खेल व तमाशे हैं। **परन्तु शोक कि वेदान्त कभी भी भारत वर्ष का सामाजिक धर्म न रह सका।** वेदों की अज़मत क़ायम रखने के लिये, अथवा बौद्धधर्म के कर्मकाण्ड से मनुष्यों को एकाएक न हटा सकने के कारण श्रीमद् शंकराचार्य मृतवत् रस्मों के आडम्बर युक्त कर्म कांड के शिकार हुये। और उनके लाख प्रयत्न करने पर भी कई सदियों तक पवित्र वेदान्त **प्रछन्न बौद्धधर्म** कहाता रहा। साथ ही जिन सिद्धांतों को बौद्धधर्मावलम्बी अच्छा समझते थे, जिन सामाजिक नियमों की वे प्रतिष्ठा करते थे उनके विपरीत, उनको जड़से समूल नष्ट करने के हेतु हिन्दुओं के आचार्यों की ओर से घोषणा प्रकाशित करदी गई। जहां बौद्धधर्म समस्त मानव जाति का धर्म था, वहां हिंदू धर्म वर्णाश्रम हिंदूधर्म, संसार के मनुष्यों का नहीं, सम्पूर्ण भारत का नहीं, किन्तु कुछ इने गिने ब्राह्मण क्षत्री वैश्यों का धर्म रह गया।

जहां भगवान बुद्धदेव ने आत्मिक उन्नति पर जोर दिया था और सामाजिक संकीर्णता के नष्ट कर देने की आज्ञा दी थी वहां श्री शंकराचार्य ने आत्मा को सर्व श्रेष्ठ सत्ता मानते हुये भी व्यवहारिक धर्म की नींव डाली।

उसका परिणाम यह हुआ कि ज्ञान कांड तो सब के लिये दुर्लभ होगया। और अधिकांश जन संख्या भ्रममूलक, मनुष्य को मनुष्य से दूर करने वाले और रसम व रीति के पाबन्द, बाह्य धर्म के खिलौने को अपने साथ ले उसी में कई शताब्दियों तक बहल गई। बौद्धधर्म के उदार सिद्धान्तों के विरुद्ध भारत वर्ष की हद बन्दी कर दी गई मानो भगवान शंकर ने चार मठ स्थापित कर सार्वभौमिक हिंदूधर्म को भारत वर्ष की चहार दीवारी में कैद किया। चाहे उनका यह आशय न हो, परन्तु उनके बाद पुनः स्थापित हिन्दू धर्म का नित्य नैमित्तक जीवन अत्यन्त संकीर्ण हो गया। और आज तक वह संकीर्णता मौजूद है। इसी संकीर्णता के कारण, तंग दिली के सबब, वेदान्त भारत वर्ष का सामाजिक धर्म न हो सका व सदियों तक प्रछन्न बौद्धधर्म कहलाता रहा। काश! कभी वेदान्त और बौद्धधर्म के सिद्धान्तों का एकीकरण हो जाता! यदि बौद्धों की उदारता, उनके कर्तव्य पालन का आदर्श, उनकी अनाश्रित और जगत के प्रति उपकार वृत्ति का मेल श्रेष्ठ वेदान्त के तत्वों से हो जाता तो हमारे अन्दर हमारे समाज में कभी भी शिथिलता न होने पाती। वैसी दशा में हम अपने अधिकारों की अवश्य रक्षा कर पाते। वेदान्त की आज़ादी और बौद्धधर्म की सामाजिक श्रेष्ठता हमको सदा संसार के लिये आदर्शनीय और पूज्य बनाये रखती। परन्तु हतभागी हिन्दू जाति के लिये यह बदा न था। हमारा वैराग्य निराशा, उदासीनता, के रूप में परिवर्तित हो गया। और सदा के लिये हम इस संसार को सराय फानी (नश्वर) समझकर कर्तव्य पथ से विमुख हो गये। हमारे हृदय में यह विचार सदियों तक न उठा कि संसार में दया, सत्य और ज्ञान का प्रचार करने के लिये उस क्षेत्र की रक्षा की ज्यादा जरूरत थी, जहां इन का आविर्भाव हुआ और जहां से वे संसार में फैल सके थे। उन ऋषियों के, संसार त्यागी किन्तु संसार के सच्चे उपकारक महात्माओं के विचारों की रक्षा करने के लिये एवं उनको विकसित करने के लिये पहिले देश और जाति की रक्षा करना ज़्यादा जरूरी था। यह हम न सीख सके और हमारा ह्रास हुआ। परिणाम हृदय को पीड़ा देने वाला है। यदि हम जरा भी सम्हल जाते तो संसार का उपकार कर पाते। उसकी सेवा कर सके। सम्भव है कि हम फिर जाग जावें और हृदय को विस्तृत कर और पूर्ण ज्ञान को प्राप्त कर, अपनी हस्ती

स्थाई रूपसे कायम रख सकें और संसार के सामने उपदेशक और सच्चे शिक्षक की हैसियत में खड़े रह सकें; ताकि पुनः देश देशान्तरों से, पूर्व और पश्चिम से, फाहियान और हुएनसंग जैसे परिव्राजक हमारे देश में आवें। और हम संसार की सेवा कर सकें।

ब्रज मोहनलाल वर्मा

प्रकाशक का निवेदन

आज हम प्राचीन भारत के गौरवपूर्ण साहित्य के दो अमूल्य रत्नों को एक ही ग्रंथ के रूप में प्रकाशित कर अपने उदार पाठकों के सामने उपस्थित होते हैं। प्राचीन भारत के इतिहास के लिखने के लिये अभी वर्षों के मनन, अध्ययन और परिश्रम की आवश्यकता है। आशा है कि यह पुस्तक भी पांचवीं और सातवीं सदी के इतिहास के लिये सच्चे मित्र और सहायक का काम देगी।

'फाहियान' के पहिले ६० पृष्ठों में और अन्यत्र, प्रूफ़ बराबर न देखे जाने के कारण अशुद्धियां रह गई हैं। उनके लिये अलग शुद्धिपत्र लगाना पड़ा है। आशा है कि हमें आप उनके लिये क्षमा करेंगे। दूसरे संस्करण मे वे अवश्य निकालदी जावेंगी। किताब तय्यार होते तक भी फाहियान और हुएनसंग की यात्रा का नक्शा बन कर न आ सका। इस लिये हम उसे न रख सके। यदि पाठकों ने हमारे और लेखक के परिश्रम का जराभी खयाल किया तो हम इसको दूसरे सस्करण में अधिक उपयोगी बना सकेंगे और नाना प्रकार के बौद्धधर्म इतिहास और सहित्य विषयक उत्तमोत्तम चित्रों से इसे सुशोभित कर सकेंगे। हमारी इच्छा है कि अनेक पूर्वीय व पाश्चात्य इतिहास साहित्य तत्वशास्त्र एवं समाज शास्त्र विषयक अनुपम ग्रंथ हिन्दी में प्रकाशित होवें।

अंत में हम बाबू मोतीलाल वर्मा और श्रीयुत रामचन्द्र रघुनाथ सर्वटे अध्यापक गवर्नमेंट हाई स्कूल छिन्दवाड़ा को धन्यवाद देते हैं जिन्होंने इस पुस्तक के प्रकाशित करने में हर तरह हमारी सहायता की। साथही नागपूर सीतावर्डी निवासी बाबू कन्हैयालाल वर्मा भी हमारे धन्यवाद के पात्र हैं जिनके द्वारा फाहियान की अति प्राचीन प्रति हम को प्राप्त हो सकी।

प्राचीन स्थानों का परिचय

कीह्चा—सम्भवतः काशमीर या लदख या स्कारडो।

संग पर्वत—के पूर्व के छै देश। ये काराकोरम पर्वत के आस पास के देश होंगे जिनका पता नहीं लगता।

यू-हुई—वाटर्स महोदय का कहना है कि नक्शे में यह स्थान अकटास्क के नाम से प्रसिद्ध है।

कीह्चा—सम्भवतः स्कारडो नगर, जहां से सिंधु को पार किया जा सक्ता था।

तोलीह—यह दारद देश था जिसकी राजधानी चिलास या दारद सिन्धु के मुहाने के पास जंगलों में थी। हुएनसंग इसके विषय में कुछ नहीं लिखता।

वूचांग—हिन्दी नाम 'उद्यान' है। स्वात के आस पास का देश। यहां फल फूल बहुत होते हैं। जंगली स्थान है। शुभवस्तु भी इसी का प्राचीन नाम है।

शू-हो-तो—पता नहीं यह कौन सा देश था। शायद यह फारिस के राज्य का एक प्रदेश होवे।

नगर—काबुल नदी पर स्थित एक प्राचीन राज्य। जलालाबाद से ३० मील की दूरी पर है। चीनी भाषा में यह न-क्री-ह के नाम से प्रसिद्ध है।

हीलो—हिद्दा, जलालाबाद से पांच मील दक्षिण में स्थित है।

हिमपर्वत—कोहाट की वादी पर यह **सफेद कोह** नाम का पर्वत है।

पोह्ना—वर्तमान बन्नू जिला।

पीटू-पांचाल देश मालूम होता है। बहुतों का मत है कि यह भिड़ा देश है।

संकाश्य—कन्नौज के पास एक अति प्राचीन ग्राम है। ऋषि वाल्मीक प्रणीत रामायण में भी इसका उल्लेख है।

नोट—ये सब नाम अध्याय के क्रमानुसार लिखेगये हैं।

इन्दोर क्रिश्चियन कालेज के

प्रधान अध्यापक

श्रीयुत आइ. व्ही. जोहरी एम. ए. बी. डी.

के

करकमलों

में

ग्रंथ कर्ता द्वारा

सादर

समर्पित

पारिभाषिक शब्द और प्रसिद्ध पुरुषों की नामावली

ली—⅓ मील से कुछ ज़्यादा चीनी माप

बुद्धसत्व—वे पवित्रात्मायें जो किसी अगले जन्म में **बुद्ध** होंगी। वे दया के पात्र हैं। परोपकार उनका धर्म है। संसार की सच्ची सेवा करना उनका परम कर्तव्य है। उनमें अहंकार लेश मात्र को नहीं होता। **प्रभु मैत्रेय** भी भावी बुद्धसत्व की दशा में हैं।

धर्मचक्र—यह अति प्राचीन शब्द है। जो संसार के नियमों को अपने वश में कर सके उसे चक्रवर्ती कहते थे। राजनैतिक दृष्टि से वही चक्रवर्ती राजा कहलाता था। संसारचक्र प्रसिद्ध है। कार्य और कारण का यह चक्र निरन्तर चलता रहता है। तिब्बत, तातार और मध्य एशिया के बौद्ध एक चक्र तय्यर करते हैं। वे उसे घंटों घुमाते रहते हैं। वे कहते हैं कि इस के एक बार घुमाने से उतनाही शुभ फल प्राप्त होता है जितना कि सहस्र बार प्रार्थना करने से। यह भगवान बुद्धदेव के बनारस में घुमाये हुऐ पहिले धर्म चक्र की नकल है।

श्री मैत्रेय बुद्धसत्व—यह बुद्धदेव के शिष्यों में से हैं। एतहासिक शिष्यों में इनका नाम नहीं मिलता। परन्तु बौद्धशास्त्रों में लिखा है कि बुद्धदेव इन से तुषित स्वर्ग में जो बौद्धों का चौथा स्वर्ग है मिले और इन्हें अपना प्रतिनिधि बनाया। पांच हजार वर्ष व्यतीत होने पर इनका जन्म होगा। यह **भावी बुद्ध** हैं। और बौद्ध धर्म के उत्तराधिकारी हैं। ईसाई धर्म के मसीहा और हिंदुओं के अवतार के समान बौद्ध इन में विश्वास करते हैं। उनकी अपार दया और करुणा में बौद्धों का पूर्ण विश्वास है। थियासोफी वाले भी इन पर विश्वास करते हैं।

तथागत—श्री बुद्धदेव।

मार—काम, कामदेव, वासना रुपी सेना का राजा।

त्रिरत्न—बुद्ध, धर्म और संघ

त्रिपितक—अभिधर्म, विनय, और सूत्र पितक। बौद्धधर्म के तीन प्रधान धर्म ग्रंथ।

आनन्द—श्री बुद्धदेव का चचेरा भाई। प्रथम बौद्धमहासभा में इसने बड़ा कार्य कौशल दिखलाया। आनन्द और श्री बुद्धदेव की वार्तालाप को पढ़कर जो कि महा परिनिर्वाण सूत्र में अंकित है प्रेमाश्रु आने लगते हैं। दूसरे कल्प में आनन्द बुद्ध होगा।

महा परि निर्वाण—सब प्रकार की वासनाओं को और अंत में शरीर को त्यागकर यह पद प्राप्त होता है इसके बाद जन्म मरण नहीं होता।

कनिष्क—बौद्ध संसार का प्रसिद्ध साम्राट। महायान सम्प्रदाय की वृद्धि इसी के समय में हुई। गांधार से विन्ध्या तक इसके राज्य का विस्तार था। वसुबन्धु और अश्वघोष इसके समकालीन थे। काशकर यारकांड और खोतीन भी इसके राज्य में शालित थे। चीन देश से इसका घनिष्ट सम्बन्ध था। यह प्रजा का हितचिंतक और भारत वर्ष का सरंक्षक था।

(समय—ईसा की पहिली सदी)

सारिपुत्र—बुद्धदेव का प्रसिद्ध विद्वान शिष्य नालिन्द का निवासी था। इस का नाम उपतिष्य भी था। इसने बहुत से शास्त्र लिखे। अभिधर्म इसी का लिखा बतलाया जाता है। बुद्धदेव के सामने ही इसकी मृत्यु हो गई थी। यह भविष्य में बुद्ध होगा। यह बुद्धदेव का दाहिना हाथ कहा जाता था।

महा मौदगल्यायन—यह भी प्रसिद्ध विद्वान और बुद्धदेव का शिष्य था। उनका बांया हाथ कहा जाता था। योग और आत्म शक्ति के लिये यह प्रसिद्ध है।

महायान व हीनयान—बौद्ध धर्म के प्रसिद दो सम्प्रदाय। हीनयान अति प्राचीन मार्ग है। श्री बुददेव के बताये हुये उपदेशों का प्रमाणनीय संग्रह यहीं मिलता है।

महायान संम्प्रदाय का आविर्भाव महाराज कनिष्क के समय से हुआ। महायान के सब ग्रंथ संस्कृत में हैं। लंका, श्याम, और ब्रम्ह देश में हीनयान मत प्रचलित है चीन, जापान, नैपाल और उत्तरीय तिब्बत में महायान का प्रचार है। इन दोनों सम्प्रदायों में बड़ा भेद है। महायान सम्प्रदाय में मूर्ति पूजा को विशेष स्थान दिया जाता है।

अर्हत—वह बौद्ध यति जिसने काम क्रोधादिक को जीत लिया हो।

संघाराम—मठ—बौद्धों के साधुओं के रहने का स्थान।

भिक्षु—बौद्ध साधु।
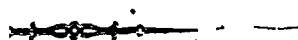
प्रथम खंड.

फाहियान

परिव्राजक फाहियान चीन का निवासी था। पहिले से आखिर तक वह धार्मिक यात्री ही रहा। धर्म ग्रन्थों की प्राप्ति के लिये और विशेषकर 'विनय पितक' की मूल पुस्तक को यहां से ले जाने के लिये वह भारत वर्ष में आया था। देश की धार्मिक और सामाजिक स्थिति का तो उसने वर्णन किया परन्तु समकालनि राजा का उसने अपने भ्रमण में नाम तक नहीं लिया। मध्यदेश का वर्णन करते हुये उसने यह नहीं लिखा कि यहां कोनसा राजा राज्य करता था। परन्तु इतिहास से सिद्ध होता है कि द्वितीय चन्द्रगुप्त देश के प्रधान साम्राट थे। उनके राज्य का विस्तार पश्चिम में काठियावाड़ तक, दक्षिण में नर्वदा के उत्तर तक, पूर्व में ताम्रलिप्ति और चम्पा तक और उत्तर में चन्द्र भागा (चिनाब) तक फैला हुआ था। वर्तमान समय का आधा पंजाब, युक्त प्रदेश, बिहार, बंगदेश, मध्यभारत, मालवा और गुजरात, ये सब प्रान्त गुप्तराज्य के अन्तर्गत थे। **महाराज द्वितीय चन्द्रगुप्त** ३७३ ईसवी में गद्दी पर बैठे थे। और ४१३ तक, प्राय: ४० वर्ष उन्होंने भारतवर्ष का राज्य किया। पाटलीपुत्र से राजधानी हटाकर वे अयोध्या ले गये। समुद्रगुप्त, द्वितीय चन्द्रगुप्त, स्कंधगुप्त और नरसिंहगुप्त बालादित्य इन चार गुप्त वंशीय राजाओं की अयोध्या ही राजधानी रही। यहां पर उनकी सेना और यहीं उनका कोषागार था। यहां पर ही उस समय की टकसाल थी।

फाहियान ने सामाजिक और धार्म्मिक दशा का खासा वर्णन किया है। शायद बीसवीं सदी की दृष्टि से उसका यह विवरण अच्छा या रुचिकर न मालूम हो परन्तु इतिहास की दृष्टि से यह अमूल्य ज्ञान है। उस से पता लगता है कि द्वितीय चन्द्रगुप्त का राज्य सम्मृद्धशाली और प्रतापी था। शासन प्रणाली अच्छी थी। लोग सुखी थे। धनधान्य की उन्हें कमी नहीं थी। २६ वें अध्याय में उसने पाटलीपुत्र के विशाल भवनोंका वर्णन किया है। उसका कथन है कि आसुरी शक्ति के सिवाय ऐसे भवन कौन बनासकता है। वे मनुष्य कृत नहीं हैं। वह बड़े चाव से वहां की रथयात्रा का वर्णन करता है। वहां के संघारामों के यतियों का ज़िकर करता है। उनकी विद्या और बुद्धि की सराहना करता है। मध्य देश के नगर सब से बड़े हैं। यहां के निवासी धनवान और सुखी हैं। वे धर्म के पालन करने में एक दूसरे से बाजी लेते हैं। इस देश में बहुत से अनाथालय हैं। निर्धनों के लिये भी जगह २ पुण्य शालायें बनी हैं। यात्रियों के ठहरने के लिये धर्मशालायें बनी हुई हैं। राजधानी में अति सुन्दर अस्पतालें हैं। ये चिकित्सा गृह धार्म्मिक और शिक्षित लोगों की सहायता से चल रहे हैं। यहां सब प्रकार के बिमार आते हैं। उनकी खूब सेवा सुश्रुषा की जाती है। डाक्टर उनका इलाज करता है उनकी सब अवश्यकतायें पूरी की जाती हैं। अच्छे होने के बाद वे अपने २ घरों को चले जाते हैं।

*प्रसिद्ध इतिहासकार विन्सेंट स्मिथ इस वर्णन के विषय में लिखता है कि :—

*No such foundation was to be seen elsewhere in the world at that date; and its existence, anticipating the deeds of modern Christian Charity, speaks well both for the character of the citizens who endowed it and for the genius of the great Asoke, whose teaching still bore such wholesome fruit many centuries after his decease. The earliest Hospital in Europe, the maison Diea of Paris is said to have been opened in the seventh century.

उस समय जब कि ये चिकित्सा गृह निर्माण किये गये थे संसार के किसी भी भाग में इस प्रकार की संस्थायें नजर नहीं पड़ती। जिन शुभ कार्यों का उल्लेख ईसाई धर्म्म के परोपकार में आता है उनका प्रचार भारतवर्ष में ईसा के पूर्व हो चुका था। इससे पता लगता है कि लोगों की वृत्ति कितनी श्रेष्ठ थी। और महाराज अशोक का हृदय स्वभवतः कितना विस्तीर्ण था। जब कि उसके मरने के कई शताब्दी बाद भी उसके शुभ उद्देशों का बराबर प्रचार बढ़ता गया। योरुप का सब से प्राचीन चिकित्सागृह जो मैसन-डियू-आफ-पेरिस के नाम से प्रसिद्ध है फ्रांस देश में सातवीं सदी में (अर्थात अशोक के एक हजार वर्ष बाद) बनवाया गया था।

फाहियान के समय में सिन्धु नदी से मथुरा तक और मथुरा से मालवा तक सर्वत्र बौद्धधर्म का प्रचार था। मथुरा में ही २० संघाराम थे और उनमें ३ हजार साधु निवास करते थे। राजा प्रजा दोनों ही बौद्धधर्म के अनुयायी थे। (अध्याय १६ वां)।

फाहियान ने मथुरा के दक्षिण के देश की खूब तारीफ की है। मालवाकी सुख और सम्पति से पूर्ण प्रजा को देख वह बहुत प्रसन्न हुआ। देश की स्वाभाविक सम्पत्ति, लोगों की उदार वृत्ति और राज्य का अत्युत्तम प्रबंध तीनों की उसने सराहना की है। यहां की आब हवा से वह खूब संतुष्ट रहा। करोड़ों मनुष्य उत्तम राज्य के जेरसाये सुख पूर्वक अपना जीवन व्यतीत करते थे। चीनी राज्यशासन प्रणाली की याद करके और उससे तुलना करके फाहियान कहता है कि हिन्दुओं को अपने घरों का नाम दर्ज रजिस्टर कराना नहीं पड़ता न उनको निरर्थक मजिस्ट्रेट और कानून के हाथों जिल्लत उठानी पड़ती है। वे जहां चाहें जा सक्ते हैं। पासपोर्ट की दिक्कत उनको नहीं पड़ती। अपनी इच्छा के अनुसार देश भरमें वे भ्रमण कर सक्ते हैं। चीनी दंड प्रणाली की अपेक्षा फाहियान को यहां की दंड प्रणाली कुछ उदार मालूम हुई। अधिकांश जुर्मों में सिर्फ जुरमाना होता था। मौत या काले पानी की सजा प्रायः नहीं दी जाती थी। जो बार २ डाके जनी के अपराध में पकड़ा जाता उसका दहिना हाथ काट

लिया जाता था। देश की लगान जमीनदारों से वसूल होती थी। राजकर्मचारियों को नियत वेतन मिलता था। वे किसी भी प्रकार प्रजा पर अन्याय नहीं करते थे।

बौद्धधर्म का इतना प्रचार था कि सारे देश में कोई किसी प्राणी की हिंसा नहीं करता था। न कोई शराब पीता था। पियाज और लहसुन भी यहां के निवासी काम में नहीं लाते थे। वे मुर्गी और सुअर नहीं पालते थे। यहां पशुओं का व्यापार नहीं होता था। चांडाल ही वधिक, मछुये और शिकारी का व्यवसाय करते थे। बौद्धों के संघाराम में धनधान्य की कमी नहीं थी। भिक्षु निर्भय होकर धर्म के पालन करने में दत्तचित्त रहते थे।

इन से तो यही सिद्ध होता है कि द्वितीय चन्द्रगुप्त के राज्य का उत्तम प्रबंध था। प्रजा के कार्य में राजा दखल नहीं देता था। वे स्वतंत्र होकर अपनी उन्नति आप करते थे। तीन साल तक फाहियान पाटलीपुत्र में रहा और दो वर्ष तक ताम्रलिप्ति के बन्दर पर। परन्तु प्रत्येक स्थान में उसकी यथोचित प्रतिष्ठा की गई, साम्राट के हिन्दू होने पर भी उसके राज्य में बौद्ध जैन सकुशल रह सक्ते थे। फाहियान ने निसन्देह जो कुछ देखा वह एक धार्मिक बौद्ध की दृष्टि से ही देखा था। इस समय पौराणिक हिन्दू धर्म अपनी बाल्यावस्था में था। वह बौद्धधर्म के कर्मकाण्ड से शताब्दियों के खेल की सामग्री एकत्रित कर रहा था।

इस समय बौद्ध जगत के सब ही प्रधान तीर्थ, नगर, विहार, और प्रदेश उजाड़ हो रहे थे। बौद्ध गया के पास घना जंगल बढ़ रहा था। जहां ईसा के पूर्व के पांचवीं सदी में भारत के प्रधान साम्राटों की राजधानी थी वहां से राज्यलक्ष्मी नाराज होकर उत्तर की ओर बढ़ रही थी। श्रावस्ती के विशाल नगर में इस समय केवल २०० घर वर्तमान थे। कपिल वस्तु और कुशनगर में भयानक जन्तु निवास करते थे। वहां इस समय चलना भी कठिन था। इन की अधोगति के कारणों का पता अभी तक इतिहास नहीं लगा सका है।

इस समय समुद्रयात्रा से हिन्दू लोग एतराज नहीं करते थे। वे स्वतंत्र पूर्वक चीन और दूर २ देशों तक जाते थे। फाहियान स्वयं सामुद्रिक यात्रा से अपने देश को वापिस गया। उस जहाज में ब्राह्मण भी थे। इससे पता लगता है कि उस समय के हिन्दू अपने विचारों में ज़्यादा स्वतंत्र और उदार थे।

अध्याय पहिला.

यात्रारंभ.

फाहियान चांगगान का निवासी था। अपने देश में धर्म की हीन दशा देख कर उस का हृदय विव्हल हो गया। वह सन ४०० ई० में धर्म ग्रन्थों के अध्ययन और उन की प्राप्ति के लिये हुईकिंग, टाऊचिंग, हुईइंग, और हुईवी नामक बौद्ध भिक्षुओं के साथ भारतवर्ष की ओर रवाना हुआ।

चांगगान से प्रस्थान करके वह लंग नामक नगर में आया। उस के साथीयात्री भी इसी उद्देश से रवाना हुये थे। यहां से वे कीनकुई राज्य में पहुंचे। यहां वे ग्रीष्मऋत भर ठहरे रहे। तत्पश्चात. गर्मी कम होने पर वे नवतन राज्य की ओर चल दिये। उन्होंने यंगलो नामक पर्वत को पार किया। यहां से वे चंगयिह-नामक नगर में पहुंचे। इस देश की दशा अव्यवस्थित है। इस कारण यहां की सड़कों पर चलना कठिन है। यहां का राजा दानपति है। उस ने इन भिक्षुओं का खूब सत्कार किया। वे उस के पास ठहरे रहे। यहां पर उन्हें कुछ भिक्षु मिले। ये भी भारत वर्ष को ही जा रहे थे। इन के नाम है संगकिंग, चेयन, हुईकीन, संगशाऊ, और पाऊयून। एक ही उद्देश होने के कारण एक दूसरे को देख कर वे बड़े प्रसन्न हुये और एक ही स्थान पर ठहर गये। इस नगर में ही उन्होंने ग्रीष्म ऋतु व्यतीत किया। यहां से चल कर वे तुनहुवांग नगर में पहुंचे। यह नगर सीमांत प्रदेश की रक्षा के लिये अच्छे मौके पर स्थित है। उत्तर दक्षिण ४० ली और पूर्व पश्चिम ८० ली इस की लम्बाई है। यहां यात्री गण एक मास तक ठहरे रहे। यहां से फाहियान, ४ साथियों को लेकर, एक राजदूत के साथ आगे बढ़ा। यहीं से पाऊयून आदिक भिक्षुओं का साथ छूट गया। उन को थुनहुआंग के शासनकर्ता ने मरुस्थल पार करने की प्रायः सब सामग्री प्रदान की। यह गोवी का प्रधान मरुस्थल है। इस में भूत प्रेत रहते हैं। सदा गरम हवा चलती है। यात्रीगण यहां बड़ी कठिनाइयां उठाते हैं। यात्रा में अधिकांश लोगों की मृत्यु हो जाती है। आकाश में एक पक्षी भी दिखाई नहीं देता। न यहां पृथ्वी पर एक

प्राणी ही मिलता है। चारों ओर मरुस्थल है। कोई भी इस को पार करने का मार्ग नहीं जानता। न कोई मार्ग दर्शक ही यहां मिल सक्ता है। स्थान २ पर केवल उन मनुष्यों की हड्डियां द्रष्टिगोचर होती हैं जो इस मरुभूमि की यात्रा में हताश होकर मर चुके हैं.

अध्याय दूसरा.

शेन-शेन से खोतान तक.

प्रायः १५०० ली की यात्रा १७ दिन में समाप्त करके फाहियान और उस के साथी शेनशेन देश में पहुंचे। यह देश पहाड़ी और उजाड़ है। यहां किसी प्रकार की अच्छी पैदावार नहीं होती। निवासी प्रायः निर्धन हैं। उन के कपड़े रद्द और मोटे हैं जिस प्रकार कि हान देश के निवासी पहिनते हैं। अधिकांश यहां ऊन सर्ज या बाल वाले कपड़े पहिने जाते हैं। यहां का राजा बौद्धधर्मावलम्बीय है। इस देश में प्रायः ४००० चार हजार भिक्षु रहते हैं। वे सब हीनयान मत के अनुयायी हैं।

इस देश के लोग और श्रमण सब ही श्री बुद्धदेव के धर्म के अनुयायी हैं। भारत वर्ष में भी यही धर्म सर्वत्र प्रचलित है। श्रमण लोग साधारणतः धर्म की व्यवस्था से परिचित हैं। परन्तु साधारण लोग धर्मतत्वों को नहीं समझते। परन्तु श्रमण और साधारण—दोनों ही धर्मानुरागी हैं। इस देश के आगे, जितने नगर हैं, उन सब में भिन्न २ भाषा बोली जाती है। सब लोग अपनी (असभ्य) भाषा में ही धर्म ग्रन्थों की आज्ञाओं का पालन करते हैं। केवल श्रमण, यतिगण, ही भारत वर्ष की भाषा में धर्म ग्रन्थों का अध्ययन करते हैं। यहां यात्रीगण एक मास ठहरे।

पन्द्रह दिन की यात्रा के बाद वे वूयी नामक देश में आये। यहां पर भी चार हजार से अधिक भिक्षुक रहते हैं। वे सब हानियान मत के अनुयायी हैं। धर्म का पालन करने में वे सदा तत्पर हैं। सिन–राज्य के श्रमण धर्म ज्ञान में इन की बराबरी नहीं कर सके। यहां पर फाहियान, फूकंगसुन नामक भिक्षु के अनुग्रह से दो मास तक, एक विहार में ठहरा रहा। यहां पर पाऊयून और उस के साथी, जो तुनहुवांग में इन से अलग हो गये थे, पुनः आकर मिले। यहां के निवासी सौजन्यता, धर्म और अतिथिसत्कार से बिलकुल अनाभिज्ञ हैं। यात्रियों के साथ उन का बर्ताव अच्छा नहीं रहा। इस लिये वे-चे-येन, हुई किन, और हुई ची, कावचांग नगर की ओर फिर

चले गये। यहां उन को सहायता पाने की अधिक संभावना थी। परन्तु फाहियान फूकंगसुन के आग्रह से वहीं ठहरा। उस भिक्षुक की सहायता से उसे आगे जाने में बड़ी सहायता मिली। वे दक्षिण-पश्चिम दिशा में रवाना हुये। आगे चारों तरफ उजाड़ देश है। उन्हे यात्रा में नानाप्रकार की कठिनाईयां उठानी पड़ी। एक बड़ी नदी भी उन्हे मार्ग में मिली। मार्ग की कठिनाईयां और अनेक प्रकार के क्लेश सहन करते हुये, एक मास और पांच दिन की निरन्तर यात्रा के बाद वे यूतीन (खोतान) नगर में आये।

अध्याय तीसरा.

खोतीन-नगर का वर्णन

रथयात्रा

खोतीन सुखप्रद और उन्नतशील राज्य है। यहां की जनसंख्या समृद्धशाली और सुखी है। सब बौद्धधर्मवलम्बीय हैं। इस नगर में गानविद्या का खूब प्रचार है। यहां कई हजार भिक्षु--यती--सन्यासी रहते हैं। उन की जीविका का प्रबंध साधारणभंडार से, जो राजा व प्रजा की ओर से निर्मित है, होता है। विहार की आमदनी का प्रबंध यतिगण स्वयं करते हैं। आमदनी केवल दान के द्वारा ही होती है। बुद्धदेव की आज्ञानुसार समस्त दान सम्पत्ति सब के हितार्थ व्यय होती है।

यहां के निवासियों के मकानात दूर २ बने हैं। प्रत्येक घर के सामने एक स्तूप बना हुआ है। सब से छोटे स्तूप की उंचाई बीस हाथ या इस से कुछ अधिक होगी। मंदिरों में प्रत्येक देश के यात्रियों और साधुओं के रहने, ठहरने और भोजनादि का अच्छा प्रबंध है। सब के लिये भिन्न २ कमरे बने हैं। **जीविकार्थ** उन को किसी प्रकार की चिंता करनी नहीं पड़ती। अधिकांश यहां **महायान** सम्प्रदायके लोग रहते हैं।

देश के अधिपति ने फाहियान के ठहरने का सब प्रबंध कर दिया। वह अपने साथियों के साथ **गोमती** नामक संघाराम में ठहराया गया। यह महायान संप्रदाय के भिक्षुओं के प्रबंध में है। इस संघाराम में तीन हजार साधू रहते हैं।

भोजन के समय एक घंटा बजाया जाता है। इस को सुन कर साधुगण एकत्रित हो जाते हैं। सब निःशब्द श्रेणीबद्ध आकर अपने २ आसन पर बैठ जाते हैं। उन के आचरण में गंभीरता और मुख पर शांत भाव झलकता है। इतनी अधिक संख्या होने पर भी भिक्षापात्र का ज़रा भी आवाज नहीं होता। वे शांति पूर्वक भोजन करने को बैठ जाते हैं।

भोजन करते समय वे किसी से नहीं बोलते । सब मौन रहते हैं । यदि किसी वस्तु की अवश्यक्ता पड़े तो वे संकेत से उसे मांगते हैं ।

हुई किंग, टांऊ चिंग और हुईतह कीहचा की ओर रवाना हुये। परन्तु फाहियान रथोत्सव देखना चाहता था । इस लिये वह तीन मास तक अपने कुछ साथियों के साथ वहीं ठहरा रहा । छोटे २ संघारामों को छोड़ कर यहां चार बड़े संघाराम हैं । चौथे मास के प्रथम दिन यहां के निवासी नगर की मुख्य सड़कों पर जलसिंचन करते हैं । तत्पश्चात उन को खूब सजाया जाता है । नगरद्वार के पासही एक विशाल मंडप बनाया जाता है । उसे भी वे खूब सुसज्जित करते है । इस मंडप में राजा व राजमहिषी कुछ दिनों तक अपना निवास रखते हैं ।

इस अधिवेशन में महायान धर्म के साधुओं की प्रधानता रहती है । राजा इनकी खूब प्रतिष्ठा करता है । नगर से तीन चार ली की दूरी पर वे चार पहिये वाला एक रथ निर्माण करते हैं । रथ ३० तीस हाथ ऊंचा रहता है । चलते समय ऐसा मालूम होता है कि मानों संघाराम का कोई विशालभवन चल रहा है । इस सुन्दर अलकृंत रथ में श्री बुद्धदेव की मूर्ति स्थापित की जाती है । यह मूर्ति सप्तरत्नों से जटित होती हैं । रथ के चारों ओर रेशमी पताका और तोरन लगाई जाती है । जिससे इसकी शोभा और भी बढ़ जाती है । प्रधान मूर्ति श्री बुद्ध-देव की है उसे. रथ के बीचोंबीच स्थापित करते है । दोनों ओर दो बुद्धसत्वों की मूर्ति रहती हैं । और चारो ओर भिन्न २ देवताओं की मूर्ति रहती है । मानो सबही मूर्तियां श्री बुद्धदेव की आज्ञा पालन करने को तत्पर हैं । यही भाव मूर्तियों की बनावट से प्रगट होता है । इन सब मूर्तियों पर स्वर्ण और चांदी के काम का अच्छा खुदाव किया जाता है । जब रथ नगर द्वार से सौ कदम की दूरी पर रहता है तब राजा नंगे पैर, राजमुकुट उतारकर, नये कपड़े पहिन, अपने हाथ में गन्धद्रव्य और पुष्प लिये मूर्ति का सत्कार करने को आगे बढ़ता है । परिचारक गण भी उसके पीछे २ चलते हैं । राजा दंडवत करता है । मूर्ति पर फूल चढ़ाता है । गन्ध प्रज्वलित की जाती हैं । जब कि मूर्तिमान रथ नगर द्वार पर आता है तब उसपर

राजरानी और नगर की सभ्य महिलायें पुष्पवर्षा करती हैं। इस अवसर पर नगर के निवासी खूब उत्सव और आनन्द मनाते हैं। सब प्रकार से इस उत्सव को गौरवयुक्त बनाया जाता है। प्रत्येक संघाराम की ओर से एक २ अलग रथ निकाला जाता है। सब के लिये दिन निश्चित रहता है। चौथे मास की प्रतिपदा को इस उत्सव का आरंभ होता है। और चतुर्दशी को यह समाप्त होता है। तत्पश्चात राजा और रानी दोनों अपने प्रासाद में वापिस चले जाते हैं।

नगर से सात आठ ली की दूरी पर "**नूतनराज संघाराम**" नामक एक संघाराम है। इसके बनने में ८० वर्ष लगे थे। इस अवसर में तीन राजा यहां की गद्दी पर बैठ चुके। यह दो सौ पच्चास हाथ ऊंचा है। इस में खुदाव का उज्वल और दर्शनीय काम किया गया है। ऊपरी छत पर चांदी व सोने की खुदाई का काम है। चारों ओर यह संघाराम नाना प्रकार के बहुमुल्य-रत्नों से सुसज्जित है। स्तूप के पीछे सर्वोपेक्षा सम्वृद्धिशाली और परम रमणीय बुद्धमन्दिर है। उसके निर्माण करने में कारीगिरी का अंत कर दिया गया है। देखने में यह अत्यंत सुन्दर है। छत्र, द्वार, खंभ और खिड़कियों पर स्वर्ण के पत्र जटित हैं। इसी प्रकार से साधुओं के रहने का स्थान भी सुशोभित है। इनकी सुन्दरता का वर्णन नहीं किया जा सक्ता। संग पर्वत के पूर्व में जो छे देश स्थित हैं वहां के राजाओं की अधिकांश मूल्यवान सपंत्ति इन मन्दिरों और संघारामों के बनाने और उनको सुसज्जित करने में खर्च हुई है। उन्होंने अपनी सम्पत्तिका अल्पांश अपने व्यय के लिये रखा; बाकी का सब धन मन्दिर और संघाराम के बनाने और सजाने में व्यय किया।

अध्याय चौथा.

कारा कोरम, बेलुरतघ पर्वत श्रेणी से, कीहचा तक.

रथोत्सव समाप्त होने के वाद संगशाऊ-तारतार-ताउ के साथ जो कि बौद्धधर्म का अनुयायी था फाहियान चतुर्थ मास में, कोफेन की ओर चलागया। वह जेहो राज्य में पहुंचा। इस यात्रा में उसे २५ दिन लगे। यहां का राजा धर्मनुयायी और वीरबलधारी है। इस के राज्य में महायान पंथ के एक हजार से अधिक साधू रहते। यहां वे १५ दिवस ठहरे। चार दिन की यात्रा के वाद वे संग लिंग पर्वत पर पहुंचे। वहां से वे यूहुई देश में आये। वहां वे ग्रीष्म ऋतु भर ठहरे रहे। तदुपरांत पच्चीस दिन तक पहाड़ों का सफर करते हुये वे कीहचा देश में पहुंचे। यहां पर पुनः हुईकिंग और उसके दो साथी फाहियान से आकर मिल गये.

अध्याय पाचवां.

पंचपरिषद्

कीहचा देश में राजा और प्रजा दोनों इस अवसर पर पंचायुष उत्सव मना रहे थे। यह उत्सव हर पाचवे वर्ष होता है इस अवसर पर राज्य की ओर से देश भर के श्रमण भिक्षु और अन्य साधुगण निमंत्रित किये जाते हैं। सभामंडप अत्युत्तम रीति से सजाया जाता है। चारों तरफ रेशमी झालर और तोरण लटकाई जाती है। अधिपति के आसन के पीछे स्वर्ण और चांदी के कमल के फूल बना कर लगाये जाते हैं।

श्रमण लोगों के बैठने का आसन अत्यंत सुशोभित और पवित्र बनाया जाता है। तदुपरांत राजा साधुओं को दान देना आरंभ करता है। दान पद्धति धर्मानुसार निश्चित की जाती है। यह उत्सव विशेषतः वर्ष के पहिले दूसरे और तीसरे मास में होता है। इस समय यहां पर (इस देश में) वसन्त ऋतु रहता है।

अधिवेषण समाप्त होने के पूर्व राजा मंत्रियों को आज्ञा देता है कि वे खास २ तरह का दान भिक्षुओं को देवें। यह दान सात दिन तक निरन्तर दिया जाता है। तत्पश्चात राजा अपनी सवारी का घोड़ा और उसका साज भिक्षुओं को दान देता है। इसी का अनुकरण मंत्री गण भी करते हैं। वे भी अपने २ घोड़े, बारीक ऊनी कपड़े और बहुमूल्य रत्न दान करते हैं।

धर्म के नियम के अनुसार राजा इस अवसर पर कुछ प्रतिज्ञायें करता हैं। उसके मंत्री भी ऐसाही करते हैं। दानक्रिया समाप्त होने के बाद अपनी इच्छा के अनुसार राजा भिक्षुओं से जो वस्तु चाहे, पुनः मोल ले सक्ता है (मोल लेता है)।

यह देश पहाड़ी और शीतप्रधान है। गेहूं के सिवाय यहां कोई अनाज पैदा नहीं होता। यहां एक कथा प्रचलित है कि ज्योंही भिक्षुगण,

श्रमण (वर्ष भर के लिये) अपने हिस्से का अनाज लेलेते है, त्योंही कुहरा और बादल उमड़ आते हैं। और खेती की बड़ी हानि होती है। इस लिये राजा ने उनसे प्रार्थना की है कि वे उस समय तक अनाज न लेवें जब तक सब देश का अन्न न पक जावे।

इस देश में श्री बुद्धदेव का एक (स्मारक स्वरूप) पत्थर का पीकदान है। इसका रंग भिक्षापात्र के रंग के समान है। यहां बुद्ध देव का एक दांत भी है। जिस पर लोगों ने एक स्तूप बनवादिया है। इसके पास ही प्रायः एक हजार भिक्षु रहते हैं। उनके शिष्यों के रहने की भी वहीं व्यवस्था है। ये सब लोग हीनयान मत के अनुयायी हैं। इन पहाड़ियों के पूर्व के निवासी निर्धन हैं। उनके कपड़े मोटे और भद्दे होते हैं जैसे कि सिन देश के लोग पहिनते हैं। परन्तु यहां पर भी ऊन रेशम सर्ज और भिन्न २ प्रकार के बालदार कपड़े पहिने जाते हैं। यहां के श्रमण धर्म का नियमित पालन करते हैं। वे चक्र का उपयोग भला भांति जानते हैं। बड़ी योग्यता के साथ उन्होंने उसे बनाया है।

यह देश संगलिंग पर्वत के मध्य में स्थित है। इस पर्वत श्रेणी के दक्षिण में चलकर यात्रीगण ऐसे देश में आये जहां के फल और वृक्ष चीन के फल और वृक्षों से भिन्न हैं। केवल बांस, अनार, और गन्ने (ऊंख) के वृक्ष चीन के वृक्षों के समान हैं।

अध्याय छठवां

सीमांत भारत, दारद देश. मैत्रेय बुद्धसत्व.

यहां से यात्रीगण उत्तरीय भारत की ओर पश्चिम मार्ग से रवाना हुये। एक मासमें उन्होंने संगलिंग पर्वत को पार किया। इस पर्वत पर सदा बरफ जमा रहता है। गरमी में भी वह नहीं पिघलता। यहां

भयानक और ज़हरीले अज़दहे रहते हैं। उनके विषयुक्त स्वास से ही मनुष्य काला पड़ कर मर जाता है। मार्ग की कठिनाइयां अत्याधिक हैं। वर्फ-शीत, आंधी, पत्थर, और पर्वत के कारण दस सहस्र मनुष्यों में कदाचित एक मनुष्य ही इसे पार कर जीवित रह सकता है। यहां के निवासी इसे वरफीला पर्वत कहते हैं। इस पर्वत को पार करने के बाद यात्रीगण भारतवर्ष की सीमा पर आये। तदुपरांत सीमांतस्थित **तोलीह** राज्य में गये। यहां भी बहुत से श्रमण रहते हैं। ये सब हनियान सम्प्रदाय के अनुयायी हैं।

प्राचीन काल में यहां एक अर्हत निवास करता था। उसने अपनी अलौकिक क्षमता और आदिसाक्षातक्रिया के बल से एक विश्व-कर्मा को तुषित स्वर्ग में ले गया। और उसे भावीबुद्ध मैत्रेय बुद्धसत्व के दर्शन कराया। खूब अच्छी तरह से देखने के बाद विश्वकर्मा ने उनकी एक मूर्ति लकड़ी की बनाई। कहते हैं वह तीन वार बुद्धसत्व के दर्शन के लिये स्वर्ग में गया। उसने ८० हाथ ऊंची एक मूर्ति निर्माण की। यह मूर्ति ध्यानमग्न और आसनस्थ है। घुटनों के पास इस मूर्ति की चौड़ाई आठ हाथ है।

कुछ एक निश्चित और शुभ तिथियों को इस मूर्ति में से प्रकाश निकलता है। चारों ओर के राजा इस मूर्ति की प्रतिष्ठा करने के हेतु यहां आते हैं। आज भी यह मूर्ति यहां ही वर्तमान है।

अध्याय सातवां.

सिन्धु पार.

पन्द्रह दिन की निरन्तर यात्रा के बाद, यात्रीगणों ने सिन्धु नदी को पार किया। मार्ग अत्यंत कठिन था। पर्वत के किनारे २ उन को चलना पड़ा, परन्तु मार्ग भयानक और ढालू (ढालवां) था। वह किनारा दस हज़ार हाथ लम्बी दीवाल के समान प्रतीत होता था। इस के तट पर पहुंचते ही

मनुष्य के नेत्र चक्कर खाने लगते हैं। आगे जाने को स्थान नहीं मिलता। ऊपर पर्वत की चोटी भयानक प्रतीत होती थी और नीचे अथाह सिन्धु नदी वह रही थी। प्राचीन काल में यात्रियों न पहाड़ छाट कर यहां से मार्ग बनाया था। और यहां पर प्रायः ७०० सीढ़ियां लगा रखी थीं। सिन्धु पार करने के लिये रस्सों का एक पुल बना हुआ था। इस स्थान पर सिन्धु नदी की चौड़ाई ८० हाथ होगी। इस का पूरा वर्णन **चांगकिन** और **कानइंग** के विवरण में भी मिलता है परन्तु वे स्वयं इस स्थान पर नहीं आये थे। सिन्धु पार करने के लिये यहां ९ तट बने हुये हैं.

यहां भिक्षुओं ने फाहियान से पूछा कि क्या तुम बता सके हो कि पूर्व देशों में, बौद्धधर्म का प्रचार कब हुआ? उस ने उत्तर दिया कि यहां के निवासी कहते हैं कि यह हमारे पूर्वजों का धर्म है। जब तुषित स्वर्ग से बुद्धसत्व **मैत्रेय** की मूर्ति लाई गई तब ही से भारत वर्ष के साधु इधर आने लगे। उन्हों ने सूत्र और विनय पिताका आदि ग्रन्थों का प्रचार इस देश में किया। बुद्ध-देव के निर्वाण काल से तीन सौ वर्ष बाद बुद्धसत्व की मूर्ति की स्थापना हुई थी। उस समय यहां चाऊवंश का पिंग नामक राजा राज्य करता था।

इस वृतांत से हम कह सक्ते हैं कि पूर्व देशों में बौद्ध धर्म का विस्तार मैत्रेय बुद्धसत्व की मूर्ति के स्थापित होने के बाद हुआ। यदि सदा दयामय और करुणामय मैत्रेय बुद्धसत्व की मूर्ति की स्थापना न होती, जो मैत्रेय कि श्री बुद्धदेव का उत्तराधिकारी और भावीबुद्ध है, तो इस देश में सत्य धर्म का प्रचार न होता। इस के बिना इस देश के निवासी धर्म के तीनों रत्नों (बुद्धधर्म और संघ) से सदा के लिये वंचित रहते। हमें विश्वास है कि धर्म का इस प्रकार प्रचार किया जाना दैविक घटनाही थी। मनुष्य ऐसा नहीं कर सक्ते। हानवंश के मिंग नामक राजा का स्वप्न भी सत्य निकला।

अध्याय आठवां।

उद्यान.

सिन्धु नदी को पार कर के यात्रीगण वूचांग (उद्यान) देश में आये। यह उत्तरीय भारत का एक प्रदेश है। यहां के निवासी मध्य भारत की भाषा बोलते हैं। यहां का रहन सहन, आचार, और विचार सब मध्य देश के आचरण के समान है। सर्वत्र, यहां बौद्धधर्म का विस्तार है। भिक्षुओं के निवास स्थान को यहां के निवासी संघाराम कहते हैं। इस स्थान में ५०० पांच सौ संघाराम हैं। भिक्षुगण-श्रमण हीनयान सम्प्रदाय के अनुयायी हैं। नये भिक्षु-श्रमण को तीन दिवस तक इन संघारामों में ठहरने की आज्ञा है। उस की सेवा की जाती है। उस की सब अवश्यकतायें संघाराम के कर्तागण पूरी करते हैं। परन्तु चौथे दिन से उसे अपना प्रबंध आप करना पड़ता है। इस देश में एक कथा प्रसिद्ध है-'उत्तर में भ्रमण करते हुये बुद्धदेव इस देश में आये थे। यहां पर उन्होंने अपने पैर का चिन्ह छोड़ा है। जिज्ञासु की इच्छा व प्रार्थना से पद-चिन्ह घट-बढ़ सक्ता है। यह चमत्कारिक घटना अब भी होती है। यहां एक पत्थर की शिला है जिस पर श्री बुद्धदेव ने अपने वस्त्र सुखाये थे। पास में ही वह स्थान हैं जहां पर उन्होंने नाग राज अपताल को वश में किया था।

फाहियान के साथी यात्री हुईकिंग, हुईतह और ताऊचिंग पहिले ही **नगर** देश में चले गये। यहां श्री बुद्धदेव की छाया के दर्शन होते हैं। परन्तु फाहियान और उस के साथी ग्रीष्मऋत भर यहीं ठहरे रहे। तदुपरांत वे दक्षिण दिशा मे रवाना हुये। और शू-हो-तो देश में पहुंचे।

अध्याय नववां।

शू-हो-तो.

इस देश में सर्वत्र बौद्ध धर्म का प्रसार है। धर्म का नियमित-पालन होता है। इसी देश में किसी पूर्व जन्म में श्री बुद्ध-देव ने, बुद्धसत्व की दशा में अपने शरीर का मांस काट कर बाज़ को खिला दिया था। यह बाज़ एक कबूतर के पीछे दौड़ रहा था। इस प्रकार श्री बुद्ध-देव ने उसकी प्राणरक्षा की। यथार्थ में यह बाज़ इन्द्र था, जो बुद्धसत्व की परीक्षा लेने के लिये बाज़ के रूप में प्रकट हुआ था। बुद्ध-देव ने यह स्थान स्वयं अपने शिष्यों को बतलाया था। जब इस देश के निवासियों को यह बात मालूम हुई तब उन्होंने उस स्थान पर एक स्तूप बनवाया। यह स्तूप अत्यंत सुसज्जित है। उस पर सोने और चांदी के पत्र जटित हैं।

अध्याय दसवां।

गान्धार देश.

पांच दिन की यात्रा करने के बाद, फाहियान अपने साथियों के साथ गान्धार देश में आया। पूर्वकाल में यहां महाराज अशोक का पुत्र धर्मविवर्धन राज्य करता था। इसी स्थानं पर बुद्धसत्व की दशा में श्री बुद्ध-देव ने अपने नेत्र-दूसरों के कल्यानार्थ दान किये थे। यहां धर्म प्रेमियों ने एक विशाल स्तूप बनवाया है। यह स्तूप सुसजित और स्वर्ण जटित है। यहां के निवासी हीनयान सम्प्रदाय के अनुयायी हैं।

अध्याय ग्यारवां।

तक्ष-शिला

तक्षशिला पहुंचने में यात्रियों ने सात दिन व्यतीत किया। चीनी भाषा में इस नगर को "छेदितमस्तक" कहते हैं। इस स्थान पर बुद्धसत्व की दशा में श्री बुद्ध-देव ने अपना शीस एक मनुष्य को दान में दिया था। इसी कारण इस स्थान का नाम तक्षशिला पड़ा।

दो दिन की यात्रा के वाद यात्रीगण उस स्थान पर पहुंचे जहां बुद्धसत्व ने एक शेरनी के क्षुधा निवारण के हेतु अपना शरीर उस को अर्पण किया था। इन दोनों स्थानों पर बड़े २ स्तूप बनाये गये हैं। इन में बहुमूल्य रत्न जटित हैं। राजा, मंत्री और साधारण मनुष्य सबही इन स्थानों की प्रतिष्ठा करने में अपना गौरव समझते हैं। रात दिन यहां मेला लगा रहता है। लोग दीपक जलाने और फूल चढ़ाने के हेतु दिनरात यहां आते रहते हैं। इन चारों स्तूपों को **महास्तूप** कहते हैं।

अध्याय बारवां

पुरूषपुर (पिशावर)

यात्रीगण चार दिन में, दाक्षिण मार्ग से पिशावर पहुंचे। पूर्वकाल में श्री बुद्धदेव ने यहां पर आनन्द से कहा था कि मेरे परिनिर्वाण काल के बाद यहां **कनिष्क** नामक एक साम्राट होगा। वह इस स्थान पर एक स्तूप बनवावेगा।

यह बात सच निकली। जब कनिष्क राज्य का अधिपति हुआ तब एक दिन एक गडरिया उस के सामने एक स्तूप बना रहा था। राजा ने उस से पूछा कि तुम क्या कर रहे हो ? उस ने उत्तर दिया कि मैं बुद्धदेव का एक स्मारक बना रहा हूं। उसी समय राजा का मन फिर गया। उस ने भी स्तूप निर्माण करने का निश्चय किया। यह गडरिया स्वयं इन्द्र था। महाराज कनिष्क का बनाया हुआ स्तूप ८४ हाथ ऊंचा है। इस में बहु मूल्य रत्न जटित हैं। फाहियान और उस के साथियों ने इस से उत्तम और सुन्दर बिशाल स्तूप इस पर्यटन में कहीं नहीं देखा। यह स्तूप देश देशान्तरों में प्रसिद्ध है। समस्त जम्बू द्वीप में इस से सुन्दर स्तूप अन्यत्र नहीं है। राजा के स्तूप के पास ही उस चरवाहे का बनाया हुआ स्तूप भी वर्तमान है। वह केवल तीन हाथ ऊंचा है।

इस देश में श्री बुद्धदेव का भिक्षा पात्र वर्तमान है। पूर्वकाल में यू-ची जाति के एक राजा ने इस देश पर आक्रमण किया था। वह भी बैद्ध धर्मावलम्बीय था। उस की इच्छा हुई कि वह भिक्षा पात्र को उठा ले जावे। बुद्ध, धर्म आर संघ का पूजन करने के पश्चात, उसने स्वयं उस भिक्षा पात्र का एक हाथी पर रक्खा। परन्तु हाथी चल न सका। वह वहीं बैठ गया। तब राजा ने एक रथ मंगवाया और इस पात्र को रथ पर लेजाना चाहा। इस रथ में आठ हाथी लगाये गये। परन्तु वह रथ भी अपने स्थान से आगे न बढ़ सका। यह चमत्कार देख राजा लज्जित व निराश हो गया। उस को विश्वास हो गया कि उस के कर्म अभी उदय नहीं हुये हैं कि वह इस भिक्षा पात्र को उठा ले जा सके। वहां पर उसने एक स्तूप और एक संघाराम बनवाया। उस की रक्षा का भी यथोचित प्रबंध कर दिया। एक सेना उसने वहां नियत किया।

इस संघाराम में प्राय: ७०० भिक्षु रहते हैं। मध्यान्यकाल में वे उस पवित्र भिक्षा पात्र को बाहर निकालते हैं। प्रथम उसकी पूजा होती है। तदुपरांत वे भोजन करने बैठते हैं। संध्या समय भी ऐसाही किया जाता है। उसमें दो मुठ्ठी आहार समा सक्ता है। यह बिविध रंगो का बना हुआ है। प्रधानता काले रंग की है। परन्तु अन्य तीन रंग भी दिखाई

पड़ते हैं। यह पात्र बहुत पतला है। इस का दल केवल $\frac{1}{5}$ इंच चौड़ा है। परन्तु यह अत्यन्त चमकीला है। जब प्रेम से विह्वल होकर निर्धन लोग इसमें दोचार फूल डालते हैं तब तो यह भर जाता है। परन्तु धनी पुरुष बिना प्रेम और श्रद्धा के इस में चाहे हजारों फूल चढ़ावें वह सदा खाली रहता है।

पावयून और सांग किंग ने इस भिक्षा पात्र का दर्शन पूजन और प्रतिष्ठा बड़े प्रेम के साथ किया। उन्होंने यहां से लौटने का भी निश्चय किया। हुईकिंग हुईताह, और ताउचिंग पहिले ही **नगर** देश में बुद्धदेव के स्मारक के तीर्थ करने चले गये थे। यहां हुईकिंग बीमार होगया। ताउचिंग उसकी सेवा सुश्रूषा के लिये ठहर गया। केवल हुईताह अकेले (पुरुष पर) में आकर सब से मिला। वहां से वह पावयून और सांक-किंग के साथ-वापिस जाने को राज़ी हो गया। यहां श्री बुद्धदेव के भिक्षापात्रसंघाराम में हुईकिंग (हुईइंग ?) की मृत्यु हो गई।

फाहियान अकेलेही उस स्थान के दर्शन करने के लिये आगे बढ़ा जहां श्री बुद्धदेव के सिर की हड्डी रखी हुई थी।

अध्याय तेरवां।

नगर-क्षेत्र.

सोलह योजन की यात्रा समाप्त करके फाहियान हीलो नगर में पहुंचा। यह नगर "नगरक्षेत्र" की सीमा पर स्थित है। इस स्थान के एक विहार में बहुरत्नों से जटित श्री बुद्ध-देव की मूर्ति स्थापित है। इस देश के राजाने, राज्यवंश में से चुनकर आठ मनुष्यों को इस के प्रबंध के लिये नियत किया है। ताकि कोई इस मूर्ति को चुरा कर न ले जावे। प्रत्येक रक्षक के पास एक २ मुहर दीगई है। और उसे आज्ञा है कि द्वार बन्द, करते समय वह इस मुहर को ताले पर लगा दे। नित्य प्रातः काल आठ संरक्षक इस विहार में आते हैं और द्वार को खोलते हैं।

तदुपरान्त स्वच्छ व सुवासित जल से हाथ पैर धोकर उस हड्डी को वाहर निकाला जाता है। और विहार के वाहर एक सुन्दर सप्तरत्न जटित गोलाकार सिंघासन पर उसे स्थापित किया जाता है। इस सिंहासिन में वैदूर्य्य का एक घंटा लगा है। उसके चारों ओर मोतियों की झालरें लटकी हुई हैं। इस हड्डी का रंग कुछ पीला और सफेद है। इसका व्यास १२ इंच है। केन्द्र के पास यह कुछ उठी हुई है। प्रतिदिन विहार के कर्मचारी ऊंचे मंच पर खड़े हो कर नगारे घंटे और शंख वजाते हैं। इनको सुनकर राजा विहार में आता है और पूजनादि करता है। पुष्प और नैवेद्य चढ़ाता है। तदुपरांत वे और उसके कर्मचारीगण उस हड्डी को अपने सिर तक लेजाते हैं और उसे प्रणाम करते हैं। यह सव क्रिया समाप्त होने के वाद पश्चिम द्वार से वे शांति पूर्वक वहां से वापिस चले जाते हैं। जिस प्रकार वे सदा पूर्व के द्वार से आते हैं। राजा पूजनादि करने के पश्चात् राजकीय कार्यों में सम्मिलित होता है।

व्यापारी भी पहिले यहां आकर पूजन करते हैं। तदुपरांत अपना काम काज देखते हैं। हर रोज अनिवार्य ऐसाही होता है। पूजन समाप्त होने के वाद वे उस हड्डी को सप्तरत्न जटित पांच फीट ऊंचे विमोक्ष स्तूप नामक स्थान में रख देते हैं। विहार के द्वार पर प्रति दिन पुष्प और सुगन्ध वेचने वालों का एक मेला लगा रहता है। दर्शक उन से फूल और प्रसाद मोल लेते और यहां चढ़ाते हैं। भिन्न देशों के राजा अपने २ दूतों के द्वारा इस स्थान की पूजा कराते हैं। यह मन्दिर चालीस कदम के घेरे में है। यह सदा अचल है। प्रथ्वी हिल जावे या आकाश टूट जावे परन्तु यह सदा ऐसाही अचल वना रहता है।

यहां से एक योजन की दूरी पर उत्तर दिशा में नगर क्षेत्र की राजधानी है। फाहियान यहां पहुंचा। यहां वुद्धसत्व ने दीपनकरवुद्ध के पूजन के हेतु चांदी के सिक्के देकर कुछ पुष्प खरीदे थे। यहां—नगर के वीचों वीच श्री वुद्ध देव के दांत पर एक स्तूप वना हुआ है। विमोक्ष स्तूप के समान इस स्थान की भी पूजा की जाती है।

नगर के उत्तर पूर्व में एक योजन की दूरी पर एक तराई (उपत्यका) है।

यहां गोशिर पर्वत से निकाला हुआ श्री बुद्ध देव का एक कांसे का दंड रखा हुआ है। इस स्थान पर एक विहार बना है। यहां भी नित्य नियमित पूजन होता है।

यह दंड गोशिर चंदन का बना है। इस पर कांसे के कील जमी है। यह १६-१७हाथ लम्बा है। और एक लकड़ी की नली में बन्द है। हजार मनुष्य भी यदि इसे निकालना चाहें तो नहीं निकाल सके (या उठा सके)।

इस तराई के भीतर पश्चिम दिशा में एक विहार है। इसमें श्री बुद्ध देव की एक कफनी रक्खी हुई है।यहां भी नित्य पूजन होता है। जब इस देश में वर्षा नहीं होती तब सब लोग यहां एकत्रित होते हैं। वे इस कफनी को निकालते है और उसका पूजन करते हैं। तदुपरात नगर भर में वर्षा होती हैं।

नगर के दक्षिण में आधे योजन की दूरी पर पहाड़ में एक गुफा है। इसका मुख दक्षिण पश्चिम की ओर है। यहां पर श्री बुद्ध देव अपनी छाया (प्रतिमूर्ति) छोड़ गये हैं। दूर से ऐसा मालुम होता है कि साक्षात बुद्धदेव स्वयं विराजमान हैं। परन्तु नजदीक से यह छाया मंद मालुम पड़ती है। आस पास के राजाओं ने यहां अच्छे २ शिल्पकार भेजे कि इस छाया की मूर्ति बनाई जावे परन्तु उन्हे सफलता नहीं हुई। कथा प्रचलित है कि एक सहस्र बुद्ध अपनी छाया यहां छोड़ जावेंगे।

प्रतिमूर्ति से चारसौ कदम पश्चिम में वह स्थान है जहां श्री बुद्धदेव ने अपने बाल मुंडाये और नाखून कटाये थे। कहते हैं यहां से वे अपने शिष्यों के साथ एक स्तूप बनाने के लिये आगे बढ़े। ताकि उनका बनाया हुआ स्तूप भविष्य में बनने वाले स्तूपों का आदर्श रहे। उनका बनाया हुआ स्तूप अभी तक वर्तमान है। इस स्थान पर प्रायः १००० स्तूप वर्तमान हैं। जो कि अंर्हत और प्रत्येक बुद्ध की स्मृति में बनाये गये हैं।

अध्याय चौदवां

हुईकिंग की मृत्यु

शरद ऋतु में तीन मास तक फाहियान यहीं ठहरा रहा। तदुपरांत उस ने अपने दो साथियों के साथ, दक्षिण दिशा पर स्थिति हिमपर्वत को पार किया। इस पर्वत पर सदा बरफ जमा रहता है। पर्वत के उत्तर दिशा में इतनी ठंड पड़ती है कि मनुष्य वहां गल जाता है। यहां कोई मनुष्य दूसरे से बात चीत भी नहीं कर सक्ता। हुईकिंग आगे न जा सका उसने फाहियान से कहा, "मित्र मैं अधिक जीवित नहीं रह सकता। तुम शीघ्र ही आगे चले जावो ताकि हम सब की यहां पर मृत्यु न हो जावे"। इतना कह कर उसने अपने प्राण छोड़ दिये। फाहियान उस के मृतक शरीर को हृदय से लगा कर विलाप करने लगा। फिर उसे होश आया। उसने कहा, यह हमारा दुर्भाग्य है। इस में हम विवश हैं।

तदुपरांत हृदय को मजबूत करके वह अपने अकेले साथी के साथ आगे बढ़ा। और दोनों ने दक्षिण दिशा से उस पर्वत को पार किया।

वे लोहि [रोहि-अफगानिस्तान का कुछ भाग] देश में पहुंचे। यहां प्रायः तीन हजार श्रमण रहते हैं। वे हीनयान और महायान दोनों सम्प्रदायों के अनुयायी हैं। यात्री यहां ग्रीष्म ऋतु भर ठहरे रहे। तदुपरांत वे दक्षिण दिशा में रवाना हुये। दस दिन के बाद वे वोहना नामक राज्य में पहुंचे। यहां भी तीन हजार से अधिक साधू रहते हैं। वे सब हीनयान सम्प्रदाय के अनुयायी हैं।

तीन दिन की यात्रा के बाद उन्होंने पुनः सिंधु को पार किया। इस स्थान की भूमि नीची और समतल है।

अध्याय पन्द्रवां

भिडा देश

नदी पार करके वे पटि्टू देश में आये। यहां बौद्धधर्म का प्रसार है। यहां के साधू हीनयान और महायान सम्प्रदाय दोनों के अनुयायी हैं। इतने दूर से अर्थात चीन देश से आये हुये यात्रियों को भारतवर्ष में जाते देख कर उनका हृदय भ्रात्रभाव और दया से प्रफुल्लित हो गया। वे आपुस में कहने लगे, यह कैसे आश्चर्य्य की बात है कि चीन देश जो कि प्रथवी के एक छोर पर स्थित है के मनुष्य बुद्धदेव के धर्म का पालन करें और धर्म ज्ञान प्राप्ति के हेतु इतनी दूर का सफर करें।

इन साधुओं ने फाहियान और उसके साथी की सब आवश्यसकतायें पूरी कीं और उनका अच्छा सत्कार किया।

अध्याय सोलवाँ ।

मथुरा.

(मध्यदेश के निवासियों का रहन सहन और आचरण)

और

वहां के श्रमण, विहार, और संघारामो ।

का

वर्णन

यहां से फाहियान अपने मित्र के साथ दक्षिण-पूर्व दिशा में रवाना हुआ । मार्ग में सैकड़ों संघाराम और असंख्य भिक्षुओं को उन्होंने देखा। इन सब स्थानों पर ठहरते हुये वे उस देश में आये, जिसे "मथुरा" कहते हैं। वे यमुना नदी के किनारे २ चलते रहे। इस पुन्यशीलानदी के दोनों तटपर २० बीस संघाराम हैं। इनमें प्रायः तीन हजार साधु रहते हैं। बौद्ध धर्म अच्छी उन्नत दशा में हैं। वही इस देश का प्रधान धर्म है। **गोवी के मरूस्थल से भारत वर्ष तक के प्रत्येक प्रदेश का और वहां के राजाओं का यही धर्म है।** सबही बौद्ध धर्म के अनुयायी अथवा सरक्षक हैं। यहां के निवासी बड़े श्रद्धालु हैं। और साधुओं की प्रतिष्ठा करते हैं। उनकी सब आवश्यक्ताओं को पूरा करते हैं। इसी प्रकार का सद्व्योहार मंत्री और उनके सम्बंधी गण करते हैं।

भोजनादि का प्रबंध करने के वाद राजा प्रधान श्रमण के सन्मुख सादर भूमिपर बैठ जाता है। इतना आदर श्रमण-भिक्षुओं का किया जाता हैं। प्रधान श्रमण ऊंचे स्थान पर बैठता है। यह प्रथा श्री बुद्धदेव के समय से आज तक बराबर चली आई है।

ठीक दक्षिण में प्रसिद्ध **मध्यदेश** है। यहां शीतोष्ण समान है। न यहां कुहरा गिरता है न बर्फ। मनुष्य संख्या घनी है और सब सुखी हैं। यहां के निवासियों की आबादी का रजिस्टर नहीं रखा जाता है।

वे अपने आपुसी झगड़ों को स्वयं तय कर लेते हैं। किसी न्यायाधीश या कानून की शरण नहीं लेना पड़ता। मनुष्य राज-भूमि को जोतते हैं। भूमि राजा की सम्पत्ति है। वे उसकी उपज का कुछ अंश राजा को देते हैं।

यहां के निवासी हर तरह स्वतंत्र हैं। जहां और जब चाहें वे जा सक्ते हैं। जहां चाहें ठहर सक्ते हैं। उनके स्वतंत्र भ्रमण में किसी प्रकार की आपत्ति नहीं ली जाती। उनके घरों में ताला नहीं लगाया जाता। केवल दंड नीति के वल से ही उन पर राज्य नहीं किया जाता। अपराधी को अपराध के लक्ष के अनुसार साधारण या अधिक जुरमाना होता है। यदि कोई मनुष्य बार २ राज्य के विरुद्ध उपद्रव करे या षटयंत्र रचे तो उसका दाहिना हाथ काट लिया जाता है। राजा के कर्मचारी, शरीर-रक्षक और साधारण नौकर सबही वैतनिक हैं। मंत्री भी वैतनिक है। निश्चित समय तक नौकरी करने के बाद वे पैन्शिन के अधिकारी होते हैं।

श्रमणेरगण (नवदीक्षित भिक्षु और भिक्षुणी) **राहुल** की आराधना करते हैं। माता यशोधरा के गर्भ से यह श्री बुद्धदेव का पुत्र था। जब श्री बुद्धदेव पूर्णज्ञान प्राप्त करने के बाद कपिलवस्तु में आये थे तब यशोधरा ने राहुल को अच्छे कपड़े पहिना कर उन के पास भेजा था। परन्तु बुद्ध के त्याग-वल के कारण राहुल को वैराग्य हो गया और उसकी इच्छा के अनुसार श्री बुद्धदेव ने उसे अपने धर्म में दीक्षित कर लिया। परि-निर्वाण के पश्चात वह वैभाषिक सम्प्रदाय का आचार्य प्रसिद्ध हुआ।

अभिधर्म और विनय ग्रंथो के अनुयायी भी इसी का पूजन करते हैं। प्रतिदिन इस प्रकार प्रत्येक आचार्य का सतकार किया जाता है। महायान सम्प्रदाय के अनुयायी प्रज्ञापारमिता मंजुश्री बुद्धसत्व, और अवलोकितेश्वर बुद्धसत्व की आराधना करते हैं। प्रधान वैश्य और ब्राह्मण लोग भिक्षुओं को वस्त्रादिक दान देते हैं। वर्ष भर में जो पैदावार होती है उसमें से भिक्षुओं की आवश्यक्ता भर अनाज विहारों में भेज दिया जाता है। इस प्रकार का दिया हुआ दान सब के काम आता है। धर्म और संघ के नियम वंश परम्परा से आज तक वैसेही चले आते हैं जैसे कि श्री बुद्ध

देव के समय प्रचालित हुये थे ।

फाहियान ने जिस स्थान पर सिंध नदी को पार किया था वहां से ४०—५० हजार ली तक एक ब्रहत् समतल क्षेत्र है । यहां पहाड़ी नदी नहीं है । केवल बड़ी २ नदियों का जल समतल भूमि पर बहता हुआ दिखाई देता है ।

नोट—फाहियान—यहां मध्य देश का वर्णन कर रहा है । पंजाब से मध्यदेश तक कोई भी पहाड़ नहीं है । और भूमि हमवार है ।

अध्याय सत्रवां.

सन्कास्य.

यहां से यात्री सन्कास्य देश में पहुंचे । यह देश दक्षिण—पूर्व दिशा में १८ योजन की दूरी पर स्थित है । इसी स्थान से श्री बुद्धदेव-त्रैश-त्रिशन्स स्वर्ग को गये थे । वहां उन्होंने अपनी माता को ज्ञानोपदेश दिया था । जब उनके आने में देर हुई तो महामौदगल्यायन स्वंय स्वर्ग में गये और श्री बुद्धदेव से प्रार्थना की कि संसार में आप के भक्त सब आप की प्रतीक्षा कर रहे हैं । बुद्धदेव ने उन्हें उत्तर दिया कि मैं एक सप्ताह के बाद जम्बू द्वीप में आऊंगा । मौदगल्यायन ने आकर यह समाचार उन लोगों को सुनाया जो श्री बुद्धदेव को संसार में न पाकर व्याकुल हो रहे थे ।

इसी अवसर पर भिक्षुणी उत्पाला के हृदय में यह उत्कट इच्छा उत्पन्न हुई कि मैं श्री बुद्धदेव का स्वागत सब से पहिले करूं । स्त्री होने के कारण वह पहिले दर्शन नहीं कर सक्ती थी । परन्तु जब श्री बुद्धदेव स्वर्ग से आये तब एकाएक यह स्त्री महा चक्रवर्ती राजा के रूप में परिणित हो गई और उसने बुद्धदेव का प्रथम सत्कार किया ।

श्री बुद्धदेव के साथ मृत्यु लोक में ब्रह्मादिक लोकों के देवगण भी आये थे। कहते हैं बुद्धदेव बहुमूल्य द्रव्यों से सम्मानित सप्त रत्न जटित सीढ़ी से उत्तरे थे। देवगण चांदी की सीढ़ी से नीचे आये थे।

बुद्धदेव के नीचे आते ही सब सीढ़ियां एकाएक गायब हो गईं। केवल एक सीढ़ी का सात-पद वाला भाग प्रथ्वी पर रह गया। महाराज अशोक ने अपने राज्य काल में उसे खुदवाना चाहा, परन्तु उसे उन सीढ़ियों का सिरा न मिला। इस घटना से श्रद्धालु अशोक की श्रद्धा और भी बढ़ी। उसने इसके निकट एक विहार बनवाया और उसमें बुद्धदेव की एक मूर्ति निर्माण की जो ६ हाथ ऊंची मध्य सीढ़ी के ऊपर स्थित है। विहार के पास ही पीछे पत्थर का एक स्थम्ब बनवाया जो ५० हाथ लम्बा है। इसके शिखर पर सिंह की एक मूर्ति है। एक समय भिन्न धर्मियों के साथ इस स्थान के विषय में विवाद उपस्थित हो गया परन्तु जब इस विषय का निपटारा न हो सका तब दोनों पक्ष वालों ने क़सम खाई कि यदि यह स्थान श्रमण लोगों का हो तो कोई चमत्कारिक घटना होनी चाहिये। तदंतर इस स्थम्ब पर का सिंह बड़े जोरों से गर्जा। इस शब्द को सुन कर विधर्मी डर गये और वे श्रमण लोगों के अधिकार में उस विहार को देकर संन्तुष्ठ हो गये।

श्री बुद्धदेव ने तीन मास तक स्वर्ग लोक का अन्न खाया था। इस कारण उनके बदन से सुगंध निकलने लगी। इसको देख कर वे शीघ्र ही स्नान करने चले गये। जहां उन्होंने स्नान किया था वहां एक स्नानागार बनवादिया गया। वह अभी तक वर्तमान है। उस स्थान पर जहां भिक्षुणी उत्पाला ने श्री बुद्धदेव का स्वागत किया था एक स्तूप बना हुआ है। उन स्थानों पर जहां श्री बुद्धदेव ने अपने सिर के बाल और नाखून कटवाये थे स्तूप बनाये गये हैं। उन स्थानों पर जहां पूर्व काल में तीन बुद्ध (क्रकचन्द, कनकमुनी, और काश्यप) और गौतुम बुद्ध बैठे थे, जहां वे घूमें थे, इत्यादि २ स्थानों पर स्तूप निर्मित हैं। उस स्थान पर जहां शक्र और ब्रह्म लोक के अधिष्ठाता इस प्रथ्वी पर उतरे थे स्तूप बने हुये हैं।

यहां प्रायः एक हजार भिक्षु और भिक्षुणी रहते हैं। इनकी जीविका का सब प्रबंध साधारणभंडारग्रह से होता है। ये अपने २ सम्प्रदाय के अनुसार धर्म का पालन करते हैं। इनमें कुछ महायान और कुछ हीनयान पंथ के अनुयायी हैं। इस देश में श्वेत कानंधारी एक दैत्य रहता है, जिस के कारण देश में खूब वर्षा होती है और खूब अन्न उपजता है। उसकी यहां बड़ी प्रतिष्ठा की जाती है। वह ग्रीष्म ऋतु के वाद अपना रूप वदल लेता है। और एक छोटासा सर्प वन जाता है। केवल उसके कान के पास कुछ छोटे २ विन्दू रह जाते हैं।

यह देश वहुत उपजाऊ है। यहां के लोग अत्यंत सुखी व सम्वृद्ध शाली हैं। दूसरे देशों के लोग जीवन निर्वाहार्थ यहां आकर वसते हैं।

इस संघाराम से पच्चास योजन की दूरी पर अग्निपुर नामक देश है। यह उत्तर पश्चिम दिशा में स्थित है।

अग्नि एक राक्षस का नाम था। उसको बुद्धदेव ने परास्त किया था। इस स्थान पर एक विहार वना हुआ है। यहां कुछ दूरी पर एक स्तूप है। इसका प्रवंध एक दैत्य के हाथ में है। वही इसे अत्यंत स्वच्छ रखता है। एक हटी राजा ने यहां वहुत से मनुष्य वसाये कि वे गर्द फैलवे। उसने कहा कि देखें यह दैत्य किस तरह इस स्थान को साफ रख सकता है। परन्तु एक भारी आंधी के झकोरे से वह स्थान पहिले के सामान क्षण भर में निर्मल हो गया।

इस स्थान पर छोटे २ एक सौ स्तूप हैं। परन्तु उनको कोई गिन नहीं सकता। चाहे आप वहां एक २ मनुष्य खडा करदें परन्तु गिनने वाला फिर भी चकराजाता है। इनके निकट ही एक संघाराम है जिसमें ६-७ सौ साधू रहते हैं। पास ही वह स्थान है जहां श्री बुद्धदेव का शरीर जलाया गया था। इस जगह घास नहीं ऊगती।

देश भर में मांसाहारी नहीं हैं। न ही कोई मादक द्रव्यों का उपयोग करता है। वे पियाज और लहसुन नहीं खाते। केवल चांडाल लोगही इस नियम का उलघंन करते हैं। वे सब वस्ती के वाहर रहते हैं। और अस्पर्श कहाते हैं। इनको कोई

छूता भी नहीं। नगर में प्रवेश करते समय वे लकड़ी से कुछ संकेत और आवाज़ करते हैं। इसको सुनकर नागरिक हट जाते हैं। इस देश के लोग सुअर नहीं पालते। बाजार में मांस और मादक द्रव्यों की दुकानें भी नहीं हैं। व्यापार के हेतु यहां के निवासी कौड़ी ? का व्योहार करते हैं। केवल चांडाल मात्रही मांस मछली मारते और शिकार करते हैं।

श्री बुद्धदेव के निर्वाण के बाद भिन्न २ राजाओं ने और वैश्य जाति के प्रधान व्यपारियों ने भिक्षुओं के लिये विहार और संघाराम बनवाये। और उन्हें खेत बाग सरोवर और वाटिकाओं से विभूषित किया। इन विहारों में किसान और चरवाहे बसाये गये। ताकि के खेती करें, और पशुओं की रेख देख करें। प्रत्येक विहार के दान का विवरण लोहे के **शासनपत्र** पर अंकित है। यह शासनपत्र विहार के प्रबंधकर्ता के पास रहता है। सब राजाओं ने इन दानपत्रो को स्वीकृत किया है। किसी ने भी उसके उलंघन करने का साहस नहीं किया। इस कारण विहार का प्रबंध अच्छी तरह से होता है।

विहार में भिक्षुओं के रहने के लिये मकान बने हुये हैं। उनको सोने के लिये पवित्र कुशासन दिये जाते हैं। उनको किसी प्रकार जीविका की चिंता नहीं उठानी पड़ती। उनके निर्वाह का सब प्रबंध प्रजा और राजा मिलकर करते हैं। चारों ओर इस वृहत् देश में यही प्रबंध है। श्रमण धर्म-ज्ञान के प्रसार में सदा तत्पर रहते हैं। वे सूत्रों का खूब अध्ययन करते हैं। उनका बहुतसा समय आराधना (योग) में व्यतीत होता है। यदि कोई बाहर का साधु उनके आश्रम में आता है तो वे उसकी बड़ी प्रतिष्ठा, आदर, और सन्मान करते हैं। उसको वस्त्र और भिक्षापात्र देते हैं। स्नान करने अथवा हाथ पैर धोने के लिये जल देते हैं। शरीर में लगाने को तेल दिया जाता है। यदि भोजन के समय के पहिले वह आता है तो उसे सहभोज में शामिल करते हैं। परन्तु और समय में जो भिक्षु आता है उसको कुछ नियमित आहार दिया जाता है। तदुपरांत उसे विश्राम करने को

स्थान बता दिया जाता है। जब वह आराम कर लेता है, तब उससे पूछते हैं कि तुम इस आश्रम [सन्यास] म कितने वर्षों से अपना जीवन व्यतीत कर रहे हो। उससे भिन्न २ धार्मिक विषयों पर वार्तालाप होती है। बाद में उसके ठहरने का प्रबंध कर दिया जाता हैं और उसकी सब आवश्यक्तायें पूरी की जाती हैं।

श्रमण अपने निवास स्थान के पास ही सारिपुत्र, महा-मौदगल्यायन और आनन्द की स्मृति में स्तूप निर्माण करते है। स्त्रियां (भिक्षुनी) आनन्द को अपना प्रधान आचार्य मानती हैं। क्योंकि उसी की प्रेरणा से स्त्रीजाति को बौद्ध धर्म के श्रमणसंघ में प्रवेश करने की आज्ञा मिली थी। इसी प्रकार यतिगण अभिधर्म, विनय और सूत्र ग्रन्थों की आराधना में स्तूप बनातें हैं।

वर्षाकाल समाप्त होने के बाद, आसपास के लोग, यात्रियों के पास आये और उन से प्रार्थना की कि वे उनको धर्मोपदेश करें। सब साधु एकात्रित हुये और धर्म का उपदेश यात्रियों ने दिया। उन्होंने सारिपुत्र के स्तूप पर नैवेद्य भी चढ़ाया। रातभर दीपक जलता रहा।

मधुर व ललित गति और प्रार्थनायें होती रहीं। सारिपुत्र ब्राह्मण था। धर्म-ज्ञान प्राप्त करने के हेतु वह श्री बुद्ध-देव के पास गया था। उनके उपदेश को सुनकर उसके हृदय में वैराग्य उत्पन्न हो गया। और उसने संसारिक वैभवों का त्याग कर दिया। इसी प्रकार काश्यप और महामौदगल्यायन भी बौद्ध-धर्म में दीक्षित हुये थे। भिक्षुनी आनन्द के स्तूप पर नैवेद्य चढ़ाती हैं। क्योंकि उसी की प्रार्थना से महाप्रभु बुद्ध ने स्त्रियों को बौद्ध-धर्म के सन्यस्थ में दीक्षित होने की आज्ञा दी थी।
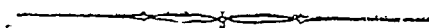
अध्याय अठारवां

कान्य कुब्ज

गरमी के दिनों में चार मास तक फाहियान नागविहार में ठहरा रहा। यहां से वह दक्षिण-पूर्व दिशा में रवाना हुआ। और कान्य कुब्ज नगर में पहुंचा। यह नगर श्रीगंगाजी के तट पर स्थित है। यहां दो संघाराम हैं। इनमें हनियान सम्प्रदाय के विद्यार्थी रहते हैं। नगर से ६--७--ली की दूरी पर पश्चिम की ओर गंगा के तट पर वह स्थान है जहां बुद्ध देवने अपने शिष्यों को धर्मोपदेश दिया था। यहां पर उन्होंने जीवन की अनित्यता, और शरीर की असारता व क्षणभंगुरता पर उपदेश दिया था। इस स्थान पर एक स्तूप बना हुआ हैं।

गंगा को पार करके फाहियान **आली** नामक ग्राम में आया। पहिले स्थान से यह ग्राम तीन योजन दूर है। यहां भी बुद्धदेव के स्मारक वर्तमान हैं।

अध्याय उन्नीसवां

साकेत।

यहां से तीन योजन दक्षिण-पूर्व दिशा में साकेत नगरी है। यहां फाहियान पहुंचा। नगर के दक्षिण द्वार के बाहर सड़क के पूर्व में वह स्थान है जहां श्री बुद्धदेव ने पीतपर्णी वृक्षकी लकड़ी से दांतुन किया था। उस दांतुन ने जड़ पकड़लिया और एक विशाल वृक्ष के रूप में वह बढ़ गया। यह सात हाथ ऊंचा वृक्ष है। यह न बढ़ता है न घटता है। विधर्मियों ने कई बार इस वृक्ष को काटकर दूर फेंकदिया, परन्तु वह अपने स्थान पर आगया। और आज भी हरा भरा है। इस नगर के पूर्व में वह स्थान है जहां चारों बुद्धो ने भ्रमण किया था।

अध्याय बीसवां

कौशल और श्रावस्ती।

यहां से दक्षिण दिशा में आठ योजन चल कर फाहियान श्रावस्ती नगर में पहुंचा। यह नगर कौशल राज्य के अन्तर्गत है। इस समय यह बिल्कुल उजाड़ है। अधिक से अधिक यहां दो सौ घर वर्तमान होगें। प्राचीन काल में राजा **प्रसन्नाजित** यहां शासन करते थे। यहां पर **महाप्रजापति** का प्राचीन विहार वर्तमान है। यहां वैश्य कुल गौरव **सुदत्त** का बनाया हुआ कुंआ और उसके भवन की दीवारों के खंडरात मौजूद हैं। यहां पर अनगुलिमाल्य अर्हत पद को प्राप्त हुये थे। इन सब स्थानों पर स्तूप निर्मित हैं। ब्राह्मण और विधर्मी इन स्तूपों को नष्ट करना चाहते थे, परन्तु अकस्मातिक स्वर्गीय घटनाओं ने सदा इन पवित्र स्थानों की रक्षा की।

नगर के दक्षिण द्वार के बाहर १२०० कदम की दूरी पर वह स्थान है जहां दक्षिण दिशा में वैश्याधिपति अनाथपिंडक (सुदत्त) ने एक विहार बनवाया था। द्वार के दोनों तरफ पत्थर के दो स्थम्ब बने हैं। बायें स्थम्ब के शिखर पर धर्मचक्रकी मूर्ति निर्माण की हुई है। दाहिने स्थम्ब के ऊपर बैल की मूर्ति अंकित है। संघारामों के दाहिनें बायें सुन्दर निर्मलजलपूर्ण तालाब हैं। इन के आसपास वृक्षों की घनी वाटिकायें हैं। जहां असंख्य सुगंधित पुष्प चारों तरफ अपूर्व शोभा धारण करते हैं। यह प्रसिद्ध **जीतवन** विहार है। अनाथ पिंडक ने प्रसन्नजित के पुत्र जीत से कुछ जमीन मोल लेकर इस विहार को बनवाया था और इसे श्री बुद्धदेव को दान दिया था। बहुधा इसी स्थान पर बुद्धदेव रहा करते थे।

जीतवन विहार में श्री बुद्धदेव की एक चन्दन की मूर्ति है। जब अपनी माता को उपदेश देने के लिये वे स्वर्ग में गये थे तब प्रसन्नजितने उनकी एक मूर्ति बनवाया था। जब बुद्ध स्वर्ग से वापिस आये तब यह मूर्ति अपना स्थान छोड़ कर उनको प्रणाम करने को उठी। बुद्धदेव ने उससे कहा कि तुम अपने स्थान पर रहो। मेरे निर्वाण के बाद

तुम मेरे शिष्यों के लिये आदरनीय होगी। यह बुद्धदेव की सब से पहिली मूर्ति है। जिसके आधार पर अन्य २ मूर्तियां बनवाई गई हैं। तदुपरांत श्री बुद्धदेव एक दूसरे विहार में चले गये। यह दूसरा विहार जीतवन विहार के दक्षिण में बीसकदम की दूरी पर स्थित है।

जीतवन विहार में सात मञ्जिल थे। यह उस समय का सब से विशाल भवन कहा जाता था। चारों दिशा के राजा इस विहार में दर्शन करने आते थे। उस को भली भांति से सुसज्जित किया गया था। चारों ओर रेशमी झालर और बहुमुल्य रत्न लगाये गये थे। भिन्न २ प्रकार की सुगंध वहां जलाई जाती थी। रोशनी के कारण रातभी दिन के समान प्रतीत होती थी। एक दिन अकस्मात् एक चूहे ने जलती बत्ती छतपर ले गया। इससे रेशम के डोरों में आग लग गई। इस अग्नि प्रवाह से समस्त भवन जल कर राख हो गया। श्री बुद्धदेव की मूर्ति के जलने की आशंका करके सब नागरिकों को बड़ा खेद हुआ। परन्तु सब के आश्चर्य्य और कौतुक की सीमा न रही जब उन्होंने उस मूर्ति को रक्षित पाया। अग्नि प्रकोप से भी वह मूर्ति न जली। द्वार खोलने पर लोगों ने देखा कि वह मूर्ति अपने स्थान पर विराजमान है। सम्पत्तिवान और धर्म प्रेमियों ने उस विहार का पुनः संस्कार किया। अब यह दो मनज़िली इमारत के रूप में वर्तमान है।

फाहियान और टाउचिंग यह विचार करने लगे कि यह वही विहार है जहां श्री बुद्धदेव ने पच्चीस वर्ष तक निवास किया था। यह सोचते ही उनका हृदय गदगद हो गया। और उनके प्रेमाश्रु टपक पड़े। उन के हृदय में नानाप्रकार के कष्टदायक विचार आने लगे। उन मित्रों की उन्हें याद आई जिनके साथ इनकी बाल्यवस्था व्यतीत हुई थी। उनकी सम्पूर्ण और महाकाठिन यात्रा का चित्र उनके नेत्रों के सामने खिच गया। यात्रारंभ में हमारे साथ कितने आदमी सम्मिलित हुये थे, कितने मार्ग में मर गये, कितने हताश होकर वापिस चले गये, ये विचार उनके हृदय को कष्ट देने लगे। आज हम दो मनुष्य ही उस स्थान पर पहुंचने में समर्थ हुये हैं। तब भी हम भगवान बुद्धदेव के दर्शन नहीं कर पाये। यात्री इस प्रकार के विचारों में मग्न थे कि

विहार के साधुओं ने उनसे पूछा कि आप लोग कहां से आते हैं? उन्होंने बतलाया कि हम चीन के निवासी हैं। धर्म ज्ञान प्राप्त करने और बौद्धधर्म के मूल ग्रन्थों के अध्ययन करने के लिये हम लोग यहां आये हुये हैं। विहार के साधुओं ने अपने जीवन काल में किसी भी चीनी को अपने देश में धर्म के हेतु आते नहीं देखा था। उनके आश्चर्य की सीमा न रही। वे आपुस में ऐसी बात चीत करने लगे। हमारे शिक्षकों ने अथवा उन्होंने भी कभी चीन देश के मनुष्य को यहां आते नहीं देखा। यह हमरा साभैाग्य है कि हम इन्हें यहां देख रहे हैं।

जीतवन विहार के उत्तर पश्चिम कोण में चार ली के फासले पर वह वृक्ष वाटिका है जहां जन्मांध लोगों को श्री बुद्धदेव की कृपा से नेत्र ज्योति प्रदान हुई थी। प्राचीन काल में विहार के आश्रित पांचसौ अंधे मनुष्य रहते थे। एक दिन श्री बुद्धदेव के उपदेश के कारण उनको नेत्र ज्योति प्राप्त हुई। उन्होंने प्रसन्नता पूर्वक बुद्धदेव को प्रणाम किया। जिन लकड़ियों के बलसे वे चलते थे उन्होंने उन को प्रथ्वी में गाड़ दिया। वे लकड़ियां ऊग गई और उस स्थान पर एक अच्छी सघन वाटिका तय्यार हो गई। बहुधा जीतवन विहार के भिक्षुगण मध्यान्यकाल का भोजन करने के उपरांत वहां एकत्रित होकर ध्यान और आराधना करते हैं।

जीतवन विहार से ६—७ ली की दूरी पर माता विशाखा द्वारा बनायाहुआ एक विहार है। यहीं पर विशाखा ने साशिष्य बुद्धदेव को निमंत्रित किया था।

जीतवन विहार के प्रत्येक कमरे में जहां कि भिक्षु रहते हैं दो-दो दरवाज़े हैं। एक उत्तर और दूसरा पूर्व की ओर। वाटिका उस स्थान पर बनी है जिसे सुदत्त ने सोने की मोहरें बिछाकर मोल लिया था। विहार बीच में स्थित है। सब स्थानों की अपेक्षा यहां श्री बुद्धदेव बहुत दिनों तक रहे थे। यहीं पर वे सदा धर्मोपदेश देते थे। उनके उठने बैठने, अथवा रहने के स्थान पर श्रद्धालु भक्तों ने स्तूप बना दिये हैं। प्रत्येक स्तूप के भिन्न २ नाम हैं। उस स्थान को रक्षित रखा गया है जहां सुन्दरी ने एक मनुष्य का

वध करके श्री बुद्धदेव पर इस वध का दोपारोपन करना चाहा था। जतिवन विहार के पूर्वीय द्वार से ७० कदम उत्तर की ओर सड़क के पश्चिम में वह स्थान है जहां श्री बुद्धदेव ने ९६ पंथों के नास्तिक आचार्यों को शास्त्रार्थ में परास्त किया था। इस अवसर पर राजा मंत्री और प्रजागण सबही एकत्रित थे। इसी अवसर पर चंचमना नामक एक स्त्री ने बुद्धदेव को कलंकित और दूषित करने का प्रयत्न किया था। उसने अपने पेट पर कुछ कपड़ा बांधा और यह बतलाना चाहा कि श्री बुद्धदेव दोषी हैं। परन्तु उसी समय यह प्रपंच मिट गया। देव राज इन्द्र और अन्य देवों ने सफेद चूहों के रूप में उसके वस्त्रों में प्रवेश किया। और पेट पर बंधे हुये कपड़ों को काटकर जमीन् पर गिरा दिया। कपड़ों के गिरतेही सब लोगों को इसका छल कपट मालुम हो गया। उसी समय पृथ्वी फटी और यह दुष्टा स्त्री उस में जीती समा गई।

पासही वह स्थान है जहां श्री बुद्धदेव के चचेरे भाई **देवदत्त** ने जहरीले बघनखे से इनको जख़्मी करना चाहा था। इस अपराध के कारण उसे नर्क की घोरयातना सहन करना पड़ी। उस स्थान पर जहां श्री बुद्धदेव और विधर्मियों के बीच शास्त्रार्थ हुआ था, एक विहार बना हुआ है। यह ६० फीट ऊंचा है। इस में श्री बुद्धदेव की एक उपविष्ठ मूर्ति स्थापित की गई। सड़क के पूर्व में भिन्नधर्मियों का एक देवालय है। उसे "प्रातिबिंबआच्छादित" कहते हैं। यह भी ६० हाथ ऊंचा हैं और यह विहार के ठीक सन्मुख स्थिर है। इस देवालय का नाम प्रतिबिंबआच्छादित इस लिये पड़ा कि इस के ऊपर तो विहार की छाया पड़ती है, परन्तु विहार के ऊपर इसकी छाया नहीं पड़ती। इस मन्दिर की सब चढ़ौत्री आपोंआप बौद्ध मन्दिर में चली जाती है। एक दिन ब्राह्मणों ने यह विचार किया कि अवश्यही विहार के भिक्षु हमारी चढ़ौत्री चुरा लेजाते हैं। वे रात्रिभर जागते रहे। उन्होंने देखा कि देवताओं ने मन्दिर में प्रवेश किया और यहां की चढ़ौत्री उठाकर बौद्ध मन्दिर में ले गये। और अंत में बुद्ध मन्दिर की परिक्रमा करके अदृश्य हो गये। इस चमत्कारिक घटना

को देखकर सब बौद्ध धर्म के अनुयायी हो गये। और श्रमण बन गये। उस समय जीतवन विहार के आसपास ६८ संघाराम थे। एक संघाराम को छोड़ कर बाकी में भिक्षुगण रहते हैं।

मध्यदेश में ९६ प्रकार के विधर्मियों के मत हैं। वे परलोक में विश्वास करते हैं। प्रत्येक सम्प्रदाय के अनुयाइयों की संख्या कम नहीं है। उनके साधू भी भिक्षावृत्ति धारण करते हैं, परन्तु वे भिक्षापात्र अपने साथ नहीं रखते। मार्ग में उन मतों की भी बड़ी २ पुन्यशालायें है [जहां पर यात्रियों के रहने का उचित प्रबंध है। उनको भोजन मुफ्त मिलता है। वे लोग भी विद्वान साधुओं की प्रतिष्ठा करते हैं। बौद्ध संघारामों में और यहां ठहरने का एक समान प्रबंध है। यदि इन दोनों स्थानों के नियमों में कुछ परिवर्तन है तो इतनाही कि कहीं आप ज्यादा दिनों तक ठहर सक्ते हैं कही कम दिनों तक।]

इस देश में देवदत्त मत के अनुयायी भी दिखाई देते हैं। वे पूर्वकाल में हुये तीनों बुद्धावतारों को मान्य देते हैं परन्तु वे शाक्यमुनि को बुद्ध स्वीकार नहीं करते।

श्रावस्ती से दक्षिण पूर्व में चार ली के फासले पर एक स्तूप निर्मित है। यहां पर श्री बुद्धदेव ने कौशलराज विरुदभ (वैदूर्य्य) को उस समय आगे बढ़ने से रोका था जब कि वह कपिलवस्तु पर चढ़ाई करने जारहा था।

अध्याय इक्कीसवां

पूर्ववर्ती बुद्धगण

नगर से पचास ली पश्चिम की ओर टूवी नगर में फाहियान पहुंचा। यह काश्यप बुद्ध का जन्मस्थान है। उन स्थानों पर जहां वे अपने पिता से मिले थे और जहां उन्होंने परिनिर्वाण प्राप्त किया था स्तूप निर्मित हैं। काश्यप तथागत की समाधि पर भी एक स्तूप बना हुआ है।

श्रावस्ती से दक्षिण पूर्व दिशा में १२ बारह योजन की दूरी पर नपिकिया (नाभिगा) नगर है। यात्री यहां आये। यह क्रकचन्द बुद्ध का जन्मस्थान है। इनकी स्मृति में भी कई स्तूप बने हैं। जहां वे अपने पिता से मिले थे और उन्होंने परिनिर्वाण प्राप्त किया था वहां स्मारक बने हुये हैं।

अध्याय बाईसवां

कपिलवस्तु

यहां से प्रायः एक योजन चल कर यात्री कपिलवस्तु नगर में आये। इस समय यह नगर राजा और प्रजा दोनों से शून्य है। जिधर देखो, निर्जनता का राज्य है। इसकी हस्ती हृदय में वैराग्य और निराशा उत्पन्न करती है। यहां केवल कुछ साधु और दस बीस घर के ग्रहस्थ रहते हैं। उस स्थान पर जहां महाराज शुद्धोधन का प्राचीन प्रासाद खड़ा था, राजकुमार सिद्धार्थ की मूर्तियां स्थापित हैं। जहां सिद्धार्थ ने अपनी माता के उदर में प्रवेश किया था और जहां से अपने सारथी को नगर में वापिस भेज कर वे स्वयं जंगल की ओर चले गये थे, स्मारक बने हुये हैं। इसी प्रकार उन स्थलों पर भी स्तूप निर्मित हैं, जहां बीमार मनुष्य को देखकर उनके हृदय में संसारत्याग की इच्छा प्रबल हुई थी, और जहां पूर्वीय द्वार से वे बाहर निकल गये थे।

फाहियान को वह स्थान भी दिखाया गया जहां असित ऋषि ने शुद्धोधन के बालक सिद्धार्थ का भविष्य बतलाया था। उसने कहा था कि

यह या तो चक्रवर्ती राजा होगा या चक्रवर्ती साधु।

उस स्थान पर जहां नन्दादिक के सामने सिद्धार्थ ने मस्त हाथी को उछालकर फेक दिया था, जहां वाण विद्या में सब योद्धाओं को परास्त करते हुये सिद्धार्थ ने एक ही वाण से प्रथ्वी में से जलधारा निकाला था [जिस पर वाद में एक कुंआ वना दिया गया है] जहां वुद्धतत्व प्राप्त करने के पश्चात वे अपने पिता महा शुद्दोधन से मिले थे, जहां पांच सौ शाक्यों ने उपाली नामक वुद्ध शिष्य को प्रणाम किया था, जो जाति का नाई था परन्तु वौद्ध धर्म का आचार्य हुआ, जहां वुद्धदेव ने देवताओं को भी धर्मोपदेश दिया था जिस में स्वयं उनके पिता को जानेकी आज्ञा नहीं मिली थी, जहां वुद्धदेव नयग्रोध व्रक्ष के नीचे वैठे थे, जव कि उनकी मौसी महाप्रजाति ने उन्हें संघाति (वस्त्र) अर्पण किया था, जहां वैदूर्य्य राजा ने शाक्य वंश के मनुष्यों को मारडाला, और जो मरते ही श्रुतपन्न साधू हो गये—इन सव स्थानों का यात्रियों को दर्शन कराया गया। अन्तिम स्थान पर एक स्तूप वना है।

नगर से कुछ फासले पर वह राजभूमि है जहां कि राजकुमार सिद्धार्थ एक वृक्षके नीचे वैठकर हल चलाने वाले को देखा करते थे।

नगर से पच्चास ली की दूरी पर लुम्बणी नामक प्रसिद्ध उपवन है। यहां ही श्री वुद्धदेव का जन्म हुआ था। इसमें एक तालाव है जहां राजमाता ने स्नान किया था। यहीं दो नागराज प्रकट हुये थे जिन्होंने श्री वुद्धदेव, वालक सिद्धार्थ, को नहलाया था।

प्रत्येक वुद्ध के जीवन में चार स्थान निश्चित हैं। पहिले वह स्थान जहां वे पूर्ण ज्ञान प्राप्त करके वुद्ध कहलाते हैं। दूसरा वह स्थान जहां वे धर्म चक्र फिराते हैं। तीसरा जहां वे धरमोंपदेश करते हैं और विधर्मियों का संशय निवारण करतें हैं। चौथा वह स्थान है जहां वे स्वर्ग में जाकर अपनी माता को धर्मोपदेश देते हैं और पुनः इस मृत्यु लोक में आते हैं।

कपिलवस्तु नगर निर्जन और उजाड़ है। वहुत थोड़े मनुष्य इस स्थान पर रहते हैं। सफेद हाथी और सिंह मार्ग में विचरते हैं। इस लिये राह चलना कठिन है। यात्रियों को यहां अत्यंत सावधान हो कर चलना पड़ता है।

अपने हाथ से उसने उस स्थान का घास और कचरा हटाया। उस देश के राजा को एक संघाराम बनाने पर राजी किया। आज इस संघाराम में भिक्षु निवास करते हैं। इस संघाराम का आचार्य, इस लिये, सदा कोई श्रमणेर ही रहता है। यह घटना अभी हाल की है।

अध्याय चोबीसवां

श्री बुद्धदेव का परिनिर्वाण.

यहां से चार योजन पूर्व में वह स्थान है जहां से राजकुमार सिद्धार्थ ने चंडकसारथी को अपने श्वेत घोड़ों के साथ वापिस भेजा था। यहां पर भी एक स्तूप बना हुआ है।

यहां से फाहियान अग्निकाष्ट स्तूप पर आया। यहां एक संघाराम भी है। यह स्थान पहिले स्थान से चार योजन पूर्व में स्थित है।

यहां से, यात्री १२ योजन चलकर कुशनगर में पहुंचे। इसके उत्तर में नैरंजन नदी के तट पर दो शाल के वृक्षों के बीच में वह स्थान है जहां जगत की काया पलटने वाले भगवान बुद्धदेव परिनिर्वाण को प्राप्त हुये थे। जहां बुद्ध देव के अन्तिम शिष्य सुभद्र अर्हत पद को प्राप्त हुये थे, जहां स्वर्णमय, मृत्युशय्या पर पड़े बुद्धदेव की स्तुति राजाओं ने की थी, जहां वज्रपाणि (इन्द्र) ने अपने शस्त्र अलग रख दिये थे, जहां बुद्ध-देव के शरीर की भस्म को आठ राजाओं ने आपुस में बांटा था, इन सब स्थानों पर स्मारक बने हुये हैं।

नगर के पश्चिम में तीन ली की दूरी पर एक स्तूप है। इस के नाम के विषय में एक कथा प्रचलित है। पूर्व काल में गंगा के तटस्थ देश के एक राजा की एक अप्रधान स्त्री के गर्भ से मांस का एक गोला निकला। प्रधान स्त्री ने कहा कि इसने संसार में अशुभ लक्षण प्रगट किये हैं। इस कारण उस मांस के पिंडको शीघ्र ही संदूक में बन्द करके नदी में फेंक दिया गया। उसी नदी के दूसरे तटपर एक दूसरा राजा घूम रहा था। उसने इस सन्दूक को पानी में बहते देखकर नौकरों द्वारा उसे अपने पास मंगा लिया। उसको खोलने पर उसमें एक हजार जीवित बालक निकले। घर लाकर उसने उनका लालन पालन किया। वे बड़े हुये और वलिष्ठ और यशश्वी प्रख्यात हुये। कुछ दिनों के बाद उन्होंने अपने जन्मदाता पिता के राज्य पर भी धावा किया, जिसके कारण वह अत्यन्त दुखित और चिंता युक्त हुआ। अप्रधान रानी (इन सहस्र पुत्रों की माता) ने उसकी उदासी का कारण पूछा। उसने सब वृतान्त कह सुनाया। रानी ने कहा कि तुम मत घबड़ावो। मेरी आज्ञा से वे सब भाग जावेंगे। उसने एक ऊंचा सभा मंच बनवाया, जिसपर वह खड़ी हुई। जब उन सहस्र पुत्रों ने उस देश पर धावा किया तब तो वह जोर से बोली: "ऐ मेरे पुत्रो, तुम इस प्रकार अस्वाभाविक और विद्रोह भावापन्न कार्य क्यों कर रहे हो"! उन्होंने उत्तर दिया कि भला बताओ तुम कौन हो, जो हम लोगों की माता बनने का अधिकार बताती हो। उनकी माताने कहा कि यदि तुम मेरी बातपर एतवार नहीं लाते तो अपना अपना मुंह खोलो। एकाएक उस के प्रत्येक स्तन से पांच २ सौ धारायें दूधकी निकलीं और उनके मुख में जाकर पड़ीं। जब उनको यह विश्वास हो गया कि यह निःसन्देह हमारी माता है तब उन्होंने अपने वाण और अस्त्र रख दिये। इन सहस्र पुत्रों के जन्मदाता और पोषक दोनों पिता प्रत्येक बुद्ध कहलाये।

बाद में शाक्य मुणि ने यह सब वृतान्त अपने शिष्यों से कहा। तत्पश्चात् उनकी स्मृतमें यहां स्तूप बनवाये गये। ये सहस्र बालक (भद्र कल्प) के सहस्र बुद्ध हुये।

इसी स्तूप के पास खड़े होकर, और अधिक जीवित्त न रहने की

इच्छा को त्यागकर बुद्धदेव ने आनन्द से कहा था कि मैं तीनमास के बाद परिनिर्वाण को प्राप्त होउंगा। इस समय आनन्द मोह के वशीभूत हो गया था इसलिये वह उनको यह भी न कह सका कि आप कुछ दिन और इस संसार में रहिये।

इस स्थान से तीन चार ली की दूरी पर पूर्व दिशा में एक स्तूप है। यह उस **महासभा** की स्मृतिमें बनाया गया है जो कि बुद्धदेव की मृत्यु के सौ वर्ष बाद, वैशाली में संगठित हुई थी। इस सभा में ७०० अर्हत और भिक्षु एकत्रित हुये थे और उन्होंने धर्म शास्त्रों का पुनः संस्कार ऐसे समय में किया जब कि धर्म के यथार्थ उपदेशों को लोग भूल रहे थे। बाद में लोगों ने यहां एक स्तूप निर्माण किया जो आज तक वर्तमान है।

नगर में बहुत थोड़े लोग बसते हैं। जो हैं उनका सम्बंध साधु और भिक्षुओं से है।

यहां से रवाना होकर, और दक्षिण पूर्व दिशा में बारह योजन चलकर वे उस स्थान पर आये जहां श्री बुद्धदेव का पीछा लिच्छिवी निवासियों ने किया था। यह उस समय की घटना है जब कि **जगतज्योति** महाप्रभु बुद्ध एकांत स्थान में, महानिर्वाण के प्राप्त करने के हेतु जा रहे थे। लोगों को उन्होंने बहुत समझाया कि वे उनका पीछा न करें, परन्तु उन्होंने न माना। अंत में श्री बुद्धदेव की चमत्कारिक शक्ति के कारण उन लोगों के सामने एक भारी खाई दिखाई दी जिसे वे पार न कर सके। बुद्ध-देव ने अपना भिक्षा पात्र, स्मृति चिंह स्वरुप उन्हें दिया। इसे लेकर वे अपने कुटम्भियों में वापिस आ मिले। यहां पर एक पत्थर का स्थम्ब है, जिस पर यह सब वृतांत अंकित है।

अध्याय पच्चीसवां

वैशाली

इस नगर के पूर्व दस योजन की दूरी पर वैशाली नगर है। यहां पर यात्रीगण आये। इस नगर के उत्तर में एक सघन जंगल है। इसमें एक दो मनज़िला विहार है जहां पर बुद्धदेव रहते थे। यहां पर ही आनन्द के अर्द्ध शरीर पर एक स्तूप बनाया गया है। नगर के अन्दर **अम्बपालि** ने बुद्धदेव की स्मृति में एक विहार बनाया था। यह अभी तक वर्तमान है। नगर से तीन ली की दूरी पर मार्ग के पश्चिम में वह बाग है जिसे अम्बपालि ने श्री बुद्धदेव को दान दिया था। यहां वे बहुधा रहा करते थे।

महानिर्वाण (शरीरत्याग) के कुछ ही देर पहिले, जब कि श्री बुद्धदेव पश्चिम द्वार से इस नगर को छोड़ रहे थे तब उन्होंने नगर के चारों तरफ फिर कर देखा और आनन्द से कहा था कि यह आखरी वक्त है कि जब मैं इस स्थान पर खड़ा हूं। भक्तों ने बाद में यहां स्मारक (स्तूप) बनवाये जो आजतक वर्तमान हैं।

अध्याय छब्बीसवां

आनन्द का परिनिर्वाण.

इस स्थान से चार योजन पूर्व को चलकर यात्रीगण पांच नदियों के संगम पर पहुंचे। जब आनन्द मगध से बैशाली को जा रहा था, और जब उसकी इच्छा उस स्थान में अपने शरीर के छोड़ने की हुई थी तब अजातशत्रु को देवताओंने इस बात की खबर दी। वह अपने विशाल रथ पर शीघ्र ही बैठ कर कुछ सेना साथ ले नदी के तटपर आ पहुंचा। उधर वैशाली के लिच्छिवी लोगों ने सुना कि आनन्द उनके देश में आरहा है।

तब वे भी शीघ्रही उसका स्वागत करने को आगे बढ़े। इस प्रकार वैशाली के लोग और राजा अजातशत्रु उस नदी के दोनों-तटपर एकत्रित हो गये।

तब आनन्द ने सोचा कि यदि वह आगे बढ़ता है तो अजातशत्रु को बुरा मालूम होगा और यदि वह पीछे हटता है तो लिच्छिवी लोग बहुत निराश होंगे। इस लिये उसने उसी स्थान पर अपने शरीर को भस्म करना निश्चित किया। योग शक्ति से उसी नदी की बीच धारा में आनन्द ने अपना शरीर समाधि लगा कर भस्म कर दिया। और निर्वाण को प्राप्त हुआ। योग शक्ति से भस्म किये हुये शरीर के दो भाग किये गये और दोनों देश के राजाओंने आधे २ शरीर की भस्म अपने २ हिस्से में पाई। उसे वे अपनी २ राजधानी में ले गये और उस पवित्र भस्म पर दोनों ने अलग २ स्तूप बनाये।

---

१. फाहियान पांच नदिओं का उल्लेख करता है। हाजीपूर और पटना के पास गंगा और सोनभद्र में बहुतसी नदियां मिली हैं। उसी स्थानका जिकर मालूम होता है.

अध्याय सत्ताइसवां

(अशोक का प्रेतात्माओं द्वारा बना हुआ राजप्रासाद) और चिकित्सागृहादिक का वर्णन.

नदी पार करके और एक योजन चल कर यात्रीगणं पाटलीपुत्र नगर में आये। यह नगर मगध राज में स्थित है। कभी यह महाराज अशोक की राजधानी थी। अभी तक इस नगर के मध्य में महाराजअशोक के प्रेतों द्वारा बने हुये राज महल और भवन वर्तमान हैं। इन प्रेतों को महाराज अशोक ने इस कार्य के लिये नियत किया था। उन्होंने पत्थर की इमारतें बनाईं। उन पर उत्तम प्रकार से खुदाव का काम किया और अच्छे २ नक्श निकाले। ऐसा काम मनुष्य के हाथ से किसी प्रकार भी नहीं हो सक्ता था।

महांअशोक का एक छोटा भाई था जो अर्हत पदवी प्राप्त कर चुका था। वह गिरधर कूट पर्वत पर रहता था। वहां पर वह एकांत सेवन और ध्यान आराधनादिक किया करता था। राजा उसको दिल से चाहता था। उसने अपने अर्हत भाई से प्रार्थना की कि वह नगर में आकर रहे, उसकी सव आवश्यकताऐं पूरी करदी जावेंगी। परन्तु अर्हत बन्धु को यह विश्वास था कि उसकी शांति नगर में जाने से भंग हो जावेगी। इस लिये वह सदा अशोक की प्रार्थना को अस्वीकार करता रहा। परन्तु राजा ने पुनः आग्रह करके उससे कहा कि तुम केवल मेरी प्रार्थना को स्वीकार करो मै नगर में ही तुम्हारे लिये एक पहाड़ी बनवादूंगा। तत्पश्चात राजाने एक निमंत्रण दिया और प्रेतात्माओं से कहा कि विना मुझे उपहार में कुछ दिये तुम भोजन करने न बैठना। दूसरे दिन प्रत्येक प्रेत ने चार पांच वर्गहाथ लम्बा पत्थर अपने बैठने के लिये (अथवा राजा को नज़र करने के लिये) लाया। जब अतिथिभोज समाप्त हुआ तब तो वहां पत्थरों का ढेर लग गया। महाराजने उन्हीं पत्थरों से नगर के बीच में एक पहाड़ी बनवाई और उसके नीचे एक भवन ३० हाथ लम्बा २० हाथ चौड़ा और १० हाथ ऊंचा बनाने की आज्ञा दी। वह शीघ्र ही बना दिया गया।

इस नगर में एक ब्राह्मण निवास करता था। इस का नाम **राधास्वामी** था। यह महायान साम्प्रदाय का विद्वान बहुशास्त्रों का ज्ञाता अध्यापक था। वह बड़ा पवित्र जीवन व्यतीत करता था। महाराज अशोक की इस विद्वान में गुरु के समान श्रद्धा थी। उस के पास जाकर राजा कभी बैठने का साहस नहीं करता था। यदि श्रद्धा और भक्ति से राजा उसको छूलेता, तो वह शीघ्रही राजा के जाने के वाद, स्नान करता। या पानी से हाथ धो लेता था। इसकी अवस्था ५० वर्ष की थी। सारा राज्य इसकी प्रतिष्ठा करता था। इसके द्वारा बौद्धधर्म का खूब विस्तार हुआ। भिन्न २ धर्मों के नास्तिक पंडितों का यह साहस न हो सका कि वे इसके कार्य को रोकें।

अशोक के बनाये हुये स्तूप के पास, महायान सम्प्रदाय का एक बहुविशाल और सुन्दर संघाराम बना हुआ है। पासही हीनयान साम्प्रदाय का एक संघाराम है। दोनों में छे सौ से सात सौ तक साधुभिक्षुक निवास

करते हैं। उनके रहन सहन व्योहार और शिक्षा का प्रबंध अत्युत्तम है।

चारों ओर से धर्म-प्रेमी जिज्ञासु और विद्यार्थी, शिक्षा प्राप्त करने के हेतु यहां आते हैं। यहां एक प्रसिद्ध ब्राह्मण अध्यापक रहता है। उस का नाम मंजुश्री है। महायान--सम्प्रदाय के विद्यार्थी और अनुयायी उस का बड़ा आदर करते हैं।

इस प्रांत के नगर और शहर, मध्यदेश में सब से बड़े कहे जाते हैं। यहां की प्रजा भी अधिक सुखी है और उनके पास खूब द्रव्य है। वे धर्मजीवन व्यतीत करने में और धर्म के विस्तार करने में एक दूसरे से बाजी लेते हैं। प्रति वर्ष दूसरे महीने में, वे बुद्धदेव की मूर्ति स्थापित करके एक उत्सव मनाते हैं। वे चार पहिये का एक रथ बनाते हैं। उसमें बांस के पांच मन्जिले होते हैं। इन्हें खम्बों के सहारे स्थित रखा जाता है। भाले भी इसको सम्हालते हैं। देखने में यह रथ बीस हाथ ऊंचा, एक सुन्दर और विशाल स्तूप के समान नज़र आता हैं। श्वेत रेशमी कपड़ों से इसे चारों ओर स ढांप दिया जाता है। इस पर विविध रंगों के कामकिये जाते हैं।

रथ में सोने चांदी और विल्लार की मूर्तियां स्थापित की जाती हैं। रथ के चारों कोणों पर बुद्धदेव की मूर्ति रहती है, जिनक निकट बुद्धसत्व खड़े रहते हैं। बहुविधि से सुसज्जित प्रायः बीस रथ फाहियान ने यहां देखे। सब रथ भिन्न २ प्रकार से सुसज्जित थे। निश्चित दिन, साधु और गृहस्थ जो कि इस राज्य में रहते हैं, यहां उपस्थित होते हैं। उनके साथ गायक और अच्छे २ बाजे बजाने वाले रहते हैं। वे सब मिलकर फूल और नैवेद्य से रथ की पूजा करते हैं।

ब्राह्मण बौद्धों से प्रार्थना करते हैं कि वे नगर में आकर रहें। वे दो रात्रि वहां रहते हैं। रात्रिभर वहां प्रार्थना और गाना बजाना होता रहता है और पूजन का दीपक जलता रहता है। इस देश के हर एक राज्य में ऐसाही उत्सव मनाया जाता है। वैश्य जाति के

धनवान लोग, सर्व साधारण के हितार्थ दानशालायें और चिकित्सालय खोलते हैं। देश भर के निर्धन, अनाथ, विधवायें, पुत्रहीन पुरुष और अपंग इन स्थानों पर आते हैं। यहां इनकी खूब सेवा सूश्रुषा की जाती है। डाक्टर इनकी परीक्षा करता है और उनको भोजन और औषधि मुफ्त देता है। हर प्रकार से उनका प्रबंध किया जाता है। जब वे अच्छे हो जाते हैं तब वे स्वयं अपने २ घर चले जाते हैं। महा-राज अशोक ने सात स्तूपों को तोड़ कर, जिनमें बुद्धदेव के शरीर की भस्म वर्तमान थी, उस भस्म को ८४००० स्तूपों में बटवाया था। पहिला स्तूप, जो उसने बनवाया, वह इस नगर से ३ ली की दूरी पर स्थित है। वह विशाल स्तूप है। इसके सन्मुख बुद्ध-देव का एक पदाचिन्ह वर्तमानहै। यहां एक विहार बनवादिया गया है। इसका द्वार उत्तर की ओर है और दक्षिण की ओर एक स्थम्ब है, जो कि ३० हाथ ऊंचा और १४—१५ हाथ गोल है। इस पर महाराज अशोक का एक लेख अंकित है—कि समस्त जम्बूद्वपि को अशोक ने भिक्षुओं के हाथ दान दिया और पुनः उनसे उसे मोल ले लिया। ऐसा तीन बार किया गया था। इस स्तूप से ३००—४०० कदम पर महा-अशोक ने नि-ली [१] नामक नगर बसाया था। उसमे भी एक स्थम्ब वर्तमान है, जिसपर नि-ली नगर के स्थापित होने के कारण, और उसका समय वर्ष दिन और मास, अंकित हैं।

---

१. इसका कुछ पता नहीं चलता। शायद पाटलीपुत्र की रक्षा के निमित यह छोटासा नगर, नजदीक ही बसाया गया होगा।

अध्याय अठाइसवां ।

राजग्रहि ।

यात्री यहां से दक्षिण पूर्व दिशा में नौ योजन चलकर **इन्द्रशील गुहा** पर पहुंचे । यह एक निर्जन पहाड़ी पर स्थित है । इसके शिखर पर दक्षिण दिशा में एक कमरा बना हुआ है जहां कि बुद्धदेव उस समय बैठे थे जब कि देवराज शक्र पंचशिखा नामक गवइये को उनके मनोरंजनार्थ अपने साथ लाये थे । यह स्वर्गीय गायक सितार पर गाता था । यहां पर ही शक्र ने बुद्धदेव से ४५ विषयों पर वार्तालाप किया था । वह प्रत्येक प्रश्न का उंगली से प्रथ्वी पर निशान देता जाता था । आज दिन भी वे ४२ चिन्ह वर्तमान हैं । यहां पर भी एक संघाराम है । दक्षिण पश्चिम कोण में एक योजन चलकर वे नालिन्द (नल) नामक ग्राम में आये, जो सारिपुत्र का जन्मस्थान है । यहां ही उन्होंने निर्वाण प्राप्त किया था । उस स्थान पर जहां कि उनका शरीर जलाया गया था एक स्तूप वर्तमान है ।

एक योजन पश्चिम की ओर चलने पर वे नई राजग्रहि नगरी में आये जिसे राजा अजातशत्रु ने बनवाया था । यहां पर छे संघाराम हैं । पश्चिमीय द्वार से ३०० कदम की दूरी पर राजा अजातशत्रु ने एक स्तूप बुद्धदेव के मृत शरीर की भस्म पर बनवाया था । यह स्तूप अभी तक वर्तमान है बड़ा विशाल और सुन्दर स्तूप है । नगर को पश्चिमीय द्वार से छोड़कर और चार ली दक्षिण में चलकर यात्रीगण एक तराई में आये । यहां पांच पहाड़ों के बीच में एक गोलाकार स्थान है । यही बिम्बसार की पुरानी राजधानी राजग्रहि थी । इसका विस्तार पूर्व पश्चिम ५–६ ली और उत्तर दक्षिण ६–७ ली था ।

यहां पर ही सारिपुत्र और मौदगल्यायन ने पहिले पहिल उपसेन[१] को देखा था; यहां पर ही निर्ग्रंथि सम्प्रदायके कुछ अनुयाइयों ने विषमय

---

१. यह बुद्ध के प्रथम के पांच शिष्यों में से था । इसका दूसरा नाम अश्वजित है । इसने सारिपुत्र को धर्मोपदेश दिया था ।

चावल पकाया था और उसके खाने के लिये बुद्धदेव को निमंत्रित किया था। यहां पर ही अजातशत्रु ने मस्त हाथी को शराब पिलाकर बुद्धदेव पर छोड़ा था। इसी नगर के उत्तर पूर्व दिशा में विस्तृत और असम स्थान में जीवक२ ने अम्ब पालि के बाग में एक विहार बनवाया था और यहां ही उसने बुद्धदेव को उनके १२५० शिष्योंके साथ निमंत्रित किया था। ये सब स्थान अभी तक वर्तमान हैं परन्तुनगर जन शून्य और उजाड़ है। अब यहां कोई नहीं रहता।

अध्याय उनतीसवां।

ग्रिध्रकूट पर्वत।

तराई में उतर कर और पर्वत के किनारे दक्षिण पूर्व दिशा की ओर चलते हुये पन्द्रह ली ऊपर चढ़कर यात्री गिरघरकूट पर्वत पर आये। शिखर से तीन ली नीचे एक गुफा है। यहां श्री बुद्धदेव ध्यानमग्न बैठे थे। ३० कदम पर एक दूसरी गुफा है जहां पर कि आनन्द ध्यान करने बैठे थे। उस समय मार-पिसुन गिद्ध के रूप में उस गुफा के सामने आ खड़ा हुआ और आनन्द को डराना चाहा। परन्तु बुद्धदेव ने अपनी अलौकिक शक्ति द्वारा उस पर्वत में छिद्र करके वहां से अपना हाथ बढ़ाया और उसको आनन्द के कंधे पर रखा। इस घटना से उसका भय एक दम निकल गया। अभी तक उस स्थान पर पहाड़ में छिद्र और गिद्ध के पैरों के चिन्ह वर्तमान हैं। इसी लिये इस पर्वत का नाम ग्रिध्र कूट पड़ा।

---

२. यह अम्बपालि का पुत्र था इसने भी बौद्ध धर्म की सेवा और उसके प्रचार करने में सहायता की थी।

गुफा के सामने वह स्थान भी वर्तमान है जहां कि पूर्वकालीन चारों बुद्ध बैठे थे। यहां आस पास सैकडों गुफायें हैं। यहां पर अर्हत लोग तपस्या किया करते थे। यहां पत्थर के भवन के सामने, बुद्धदेव ध्यानमग्न पूर्व से पश्चिम को घूमा करते थे। यहां ही एक चट्टान की आड़ में छुप कर देवदत्त ने बुद्धदेव पर एक शिला फेकी थी जिससे उनका अंगूठा जख्मी हो गया था। वह स्थान और शिला दोनों आज तक वर्तमान हैं [हुएनसंगने इसे १४, १५ हाथ ऊंची और ३० कदम गोल बतलाया है]

वह भवन जहां कि श्री बुद्धदेव ने धर्मोपदेश दिया था नष्ट हो चुका है और वहां अब केवल ईंट की दीवालों की नींव ही दिखाई देती है। इस पर्वत का शिखर अत्यंत सुहावना और हरा भरा है। सामने से आकाश पर्य्यंत ऊंचा मालूम होता है। आसपास के पांचों पर्वतों में यह सब से ऊंचा है। नये नगर में फाहियान ने अगर बत्तियां खरीदीं, कुछ फूल तेल और दपिक मोल लिये और वहां के दो निवासी भिक्षुओं को अपने साथ, उस शिखर तक चलने को ठहराया। वहां पहुंच कर उसने उस शिखर का पूजन किया। पुष्प चढ़ाये और दीपक जलाये। इतने में संध्या होगई। उस समय उस पर अचानक उदासीनता छागई। अश्रुओं को रोक कर उसने कहा कि इसी पर बुद्धदेव ने सुरंगम सूत्र उच्चारण किया था। मेरे दुर्भाग्य से, मै उस समय पैदा न हुआ, न, ही, मैंने श्री बुद्धदेव को देखा। आज मैं केवल वे स्थान ही देख रहा हूं, जहां भगवान का निवास था और जहां उनके पदचिन्ह अंकित हैं। और कुछ नहीं! गुफा के सामने, इतना कह कर वह सुरंगम सूत्र को पढ़ने लगा। वह रात्रिभर वहां ही रहा। फिर वह नयी नगरी में वापिस आगया।

अध्याय तीसवां।

श्रतपर्णगुफा (वेनुबन)।

पुराने नगर के बाहर मार्ग के पश्चिम दिशा में ३०० तीन सौ कदम चलने के बाद यात्रियों ने करन्द बेनुबन वाटिका में प्रवेश किया। यहां पर अभी तक प्राचीन विहार वर्तमान है। इसमें कुछ भिक्षुगण रहते हैं। वे ही इस विहार की सफाई आदि का प्रबन्ध करते हैं। विहार के उत्तर में दो तीन ली की दूरी पर स्मशान भूमि है।

पर्वत के किनारे, दक्षिण की ओर तीन सौ कदम चलकर वे पिप्पल गुफा में आये, जो पर्वत की चट्टानों के बीच में स्थित है। मध्यान्यकाल का भोजन समाप्त करने के उपरान्त श्री बुद्धदेव यहां निरन्तर ध्यान करने बैठते थे।

पश्चिम दिशा में पांच छे ली की दूरी पर पर्वत के उत्तर में वह स्थान है जिसे श्रतपर्ण कहते हैं[१]। यहां पर बुद्धदेव के निर्वाण के बाद पांच सौ अर्हतों ने सूत्रों को एकत्रित किया था।

इस महा सभा में तीन श्रेठासन बनाये गये थे जिन पर दहिने ओर मौदगल्यायन बाईं ओर सारिपुत्र और मध्य में महाकश्यप बैठे थे। सभा में चार सौ निन्नानवे भिक्षुक एकत्रित थे। परन्तु आनन्द द्वार के बाहर थे। उनको अन्दर आने की आज्ञा न थी[२]। इस स्थान पर एक स्तूप निर्माण किया गया था जो अब तक वर्तमान है।

पर्वत के किनारे बहुतसी गुफाये हैं। जहां पर अर्हत लोग आराधना

---

१. यह बौद्ध धर्म के साहित्य और इतिहास में बहुत प्रसिद्ध स्थान है। यहां पर ही, अजातशत्रु की संरक्षता में प्रथम बौद्ध महासभा हुई थी। अजातशत्रु ने ही इस गुफा को बनवाया था। यहां ही प्रथम बार बौद्ध धर्म के सूत्र एकत्रित किये गये थे।

२. ऐसा लिखा है कि दूसरे दिन ही आनन्द अर्हत पद को प्राप्त हुआ और इस सभा में सम्मिलित रहा

और ध्यान करते हैं । नये नगर को उत्तर की ओर छोड़ कर और पूर्व को तीन ली चलने पर देवदत्त का निवास स्थान मिलता है । इस से ५० कदम पर एक चतुष्कोण काली चट्टान है । प्राचीन काल में यहां एक भिक्षुक जीवन के तत्वों से निराश होकर, और उसकी निस्सारता पर वार २ विचार करके आत्मघात करना चाहता था । इसी उद्देश से उसने एक छुरी निकाली । परन्तु इतने में उसे बुद्धदेव के वे वाक्य याद आये जहां पर उन्होंने अपने अनुयाइयों को आत्मघात करने का निषेध किया है और भिक्षुओं को ऐसा उपदेश दूसरों को देने से मना किया है जिस के कारण मनुष्य जीवन से निराशा प्रकट करने लगे । परन्तु उसके हृदय की तरंग न रुकी । उसने फिर उत्तर दिया कि हां भगवान का निस्सन्देह ऐसाही उपदेश है परन्तु मै तो तृष्णा द्वेष और अज्ञानता इन तीनों महा प्रवल शत्रुओं का नाश कर रहा हूं । इतना कह कर उसने अपने गले पर छुरी मारली । वह श्रुतपन्न दशा को प्राप्त हो गया, जब छुरी गले के अर्द्ध भाग को काट चुकी तब वह अनागामिने पद को प्राप्त हुआ । और गर्दन कटतेही वह अर्हत बनगया । शरीर त्याग कर वह मृत्यु को प्राप्त हुआ—अर्थात् उस को निर्वाण पद मिल गया ।*

*यह सब बौद्धधर्म के विरुद्ध की काररवाई है ।

अध्याय इकतीसवां

गया क्षेत्र

यहां से चार योजन पश्चिम को चलकर यात्री गया नगर में आये । नगर उजाड़ और जनशून्य था । वीस ली दक्षिण को चलकर वे उस पवित्र स्थान पर पहुंचे जहां श्रीबुद्धदेव ने छे वर्ष तक कठिन तप किया था । इसके आस पास चारों ओर जंगल है ।

यहां से दो ली उत्तर को वह स्थान है जहां पर कि ग्रामीण लड़कियों ने बुद्धदेव को दूध में पका हुआ चांवल अर्थात खीर दिया था। यहां से उत्तर में दो ली के फासले पर वह स्थान है जहां एक घने वृक्ष के नीचे एक चट्टान पर पूर्व की ओर मुख किये उन्होंने खीर खाया था। वृक्ष और चट्टान अभी तक वर्तमान हैं। शिला छे हाथ लम्बी और इतनी ही चौड़ी और दो हाथ ऊंची है। मध्यभारत की जलवायु की समानता के कारण यहां वृक्ष हजार और दस हजार वर्ष तक रक्षित रहते हैं।

उत्तर पूर्व में आधे योजन की दूरी पर एक गुफा है जो पत्थरों की चट्टानों से घिरी है। यहां बुद्धसत्व पद्मासन लगाये पश्चिम को मुंह किये बैठे थे। यहां पर ही उन्होंने अपने मन में सोचा था कि यदि मैं पूर्णज्ञान को प्राप्त हो रहा हूं तो कोई आधिभौतिक चमत्कार प्रकट होवे। उसी समय उस गुफा की एक दीवाल पर बुद्धसत्व की छाया पड़ी। वह प्रकाशमान प्रतिमूर्ति अभी तक वर्तमान है। इसकी लम्बाई तीन हाथ है। इस अवसर पर स्वर्ग और प्रथ्वी विचलित हुऐ। देवों ने भविष्य वाणी की कि यह वह स्थान नहीं है, जहां कि किसी भी बुद्ध ने, पूर्व काल में, बुद्धतत्व प्राप्त किया था या कोई भविष्य में करेगा। दक्षिण--पश्चिम दिशा में, आधे योजन की दूरी पर वह पत्र--वृक्ष है जहां पूर्वकाल के सब बुद्धों ने बुद्धतत्व प्राप्त किया था। इतना कहने के बाद वे सब उस स्थान की ओर चले। बुद्धदेव भी उनके पीछे हो गये। वृक्ष से ३० कदम की दूरी पर एक देव ने उनके हाथ में कुश नाम का घास दिया, जिसको लेकर वे आगे बढ़े। जब वह वृक्ष १५ कदम रह गया, तब पांच सौ हरे पक्षी वहां उड़ते हुये आये, और तीन वार बुद्धदेव की परिक्रमा करके वे गायब हो गये। तब मार नामक विघ्नकारी देवताने उत्तर दिशा से बुद्धदेव के मन को वश में करने और विचलित करने के लिये, तीन सुन्दर अप्सराओं को भेजा और स्वयं वह दक्षिण से, अपने उद्देश की पूर्ति के हेतु आगे बढ़ा। बुद्धसत्वने अपनी एड़ी पृथ्वी में लगाई, जिससे सब राक्षस, गायब हो गये और सुन्दर स्त्रियां अतिवृद्ध दिखाई देने लगीं।

उस स्थान पर, जहां कि श्री बुद्धदेव ने ६ वर्ष तक तप किया था, और अन्य २ स्थानों पर भी भक्तों ने स्तूप बनवाये और मूर्तियां निर्माण कीं, जो आज तक वर्तमान हैं।

उस स्थान पर जहां बुद्धदेव ने, पूर्णज्ञान प्राप्त करने के बाद, वृक्ष के नीचे बैठकर विमुक्ति के आनन्द का चिंतन किया था; उस पत्र वृक्ष के नीचे, जहां सात दिन तक वे पूर्व से पश्चिम तक टहलते रहे; उस स्थान पर जहां देवताओं ने एक भवन निर्माण करके और उसे सात रत्नों से जटित कर, सात दिन तक बुद्धदेव की प्रार्थना की थी; जहां अन्धासर्पराज मछलिंद इन को सात दिन तक घेरे रहा था; जहां नयग्रोध वृक्ष के नीचे पूर्व को मुंह किये, एक वर्गशिला पर बैठे, बुद्ध देव के पास, ब्रह्मदेव आये और उनसे धर्म प्रचार करने को कहा; जहां चार देवताओं ने चार भिक्षा पात्र उनको अर्पण करने के हेतु लाये; जहां ५०० व्यापारी शहद और भूंजा हुआ आंटा इनके लिये लाये थे और उस स्थान पर जहां बुद्धदेव ने (नादि) काश्यप[१] और उसके एक सहस्र अनुयाइयों को धर्म पथ पर लाया था—इन सब स्थानों पर स्तूप निर्माण किये गये। वे अभी तक वर्तमान हैं।

उस स्थान पर जहां श्री बुद्धदेव ने पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया था, आज तीन संघाराम वर्तमान हैं। उन में भिक्षु गण रहते हैं। आस पास के रहने वाले ग्रहस्थ इनकी आवश्यकताओं को पूरा करते हैं। वे संघ के नियमों का यथोचित पालन करते हैं। खाने, पीने, उठने, बैठने से लेकर धार्मिक नियमों का पालन भी उसी प्रकार होता है, जिस प्रकार श्री बुद्धदेव के समय में होता था। चार महान स्तूपों के स्थान अभी तक रक्षित हैं। वे स्थान ये हैं: **कपिलवस्तु** जहां बुद्धदेव का जन्म हुआ था; **गया** जहां उन्होंने पूर्णज्ञान प्राप्त किया, **काशी**, जहां धर्म चक्र प्रवृत्त किया गया था और **कुशनगर** जहां वे परिनिर्वाण को प्राप्त हुये थे।

---

१. उरुवेल्व, गया और नादि काश्यप ये तीन भाई थे, इनके ५००–३०० और २०० क्रमानुसार अनुयाई थे। ये सब बौद्ध धर्म में दीक्षित हुये।

अध्याय बत्तीसवां

महाराज अशोक

पूर्व जन्म में एक दिन अशोक अन्य लड़कों के साथ मिट्टी के घर बनाता हुआ सड़क पर खेल रहा था। उसी मार्ग से शाक्यबुद्ध निकल पड़े। बालक ने बड़ी प्रसन्नता से थोड़ीसी मट्टी उनके भिक्षा पात्र में देना चाहा। बुद्धदेव ने उसकी इच्छा देख वह मिट्टी ले लिया और पुनः उसे प्रथ्वी पर फेंक दिया। उन्होंने यह आशीर्वाद दिया कि तू अगले जन्म में प्रतापी राजा होगा और ८४०० स्तूप धर्म की स्मृति में बनवायेगा। अगले जन्म में वह चक्रवर्ती राजा हुआ। जब वह एक समय जम्बूद्वीप की यात्रा कर रहा था और अपने राज्य की व्यवस्था का निरीक्षण कर रहा था तब उसे दो पहाड़ियों के चक्रवाल में एक स्थान दिखाई दिया। उसको बताया गया कि यह नर्क है और पापियों को दंड देने के हेतु बनाया गया है। इसका स्वामी यमराज है। राजा ने अपने मनमें सोचा कि जब मृत पुरुषों को दंड देने के हेतु नर्क स्थापित है और यमराज उसका राजा है तब मुझे भी अपने राज्य के अपराधियों को सज़ा देने के लिये नर्क बनाना चाहिये। उसने (अपनी राजधानी में वापिस आतेही) मंत्रियों से पूछा कि अपने राज्य में ऐसा कौन सा मनुष्य है जो नर्क बना सक्ता हैं। और उसका अधिष्ठाता बनने को तय्यार है। इस पर मंत्रियों ने उत्तर दिया कि कोई महा दुष्ट मनुष्य ही इस काम को अपने हाथ में ले सकेगा। तब राजा ने ऐसे मनुष्य के तलाश करने को बहुत से अफ़सर भेजे। एक नाले के किनारे उनको एक मनुष्य मिला जो शरीर से हृष्ट पुष्ट था। रंग उसका काला था और उस के बाल पीले और आंखे हरी थीं। वह मछलियां पकड़ रहा था और उसका व्यापार पक्षिओं को पकड़ना और उनको मारकर बेचना था। ऐसे मनुष्य को लेकर वे राजा के पास गये। इसने उसे गुप्त रीति से आज्ञा दी कि वह एक चहार दीवारी खींच कर एक नर्क बनावे। जिसमें संसारिक सुखों की और मन बहलाने की सब सामग्री हों। उसके द्वार भी

मजबूत बनाये जावें । जो कोई मनुष्य उसके अन्दर आवे उसे पहिले तो आने दे और बाद में उसको खूब कष्ट दे । यदि मैं भी वहां आऊं तो मेरे साथ भी वैसा ही व्यवहार किया जावे । मैं तुझे उस नर्क का स्वामी—नरक पति—नियत करता हूं ।

इस नर्क स्थान के बनने के कुछ दिन बादही एक भिक्षु भिक्षा मांगने के हेतु वहां पहुंचा । वहां के कर्म चारियों ने शीघ्रही उसको बन्द किया । वे उसे नर्क यातना का अनुभव कराना चाहते थे । परन्तु उसने उनसे प्रार्थना की कि मेरे भोजन का समय आगया है मुझे आहार कर लेने दो तव तुम अपना कार्य करना । शीघ्रही एक दूसरा आदमी भी वहां आपहुंचा । उसे पकड़ कर झट पट उन्होंने एक ऊखल में बांधा और उसको मूसली से खूब कूटा यहां तक कि उसकी हड्डी पसली टूट गई और खून बहने लगा । भिक्षु इस घटना को देख रहा था उसी क्षण उसके हृदय में जीवन की निस्सारता के विचार आने लगे और दुख व पीड़ा का ख्याल करते ही उसने निश्चय किया कि यह जीवन एक बुलबुले के समान है । ऐसा निश्चय करते ही वह अर्हत हो गया । तत्पश्चात वधिकोंने उसको भी पकड़ा । और उबलते हुये पानी के कुंड में छोड़ दिया । परन्तु उसके मुख पर शांति और आनन्द की छाया बनी रही । एक दम आग बुझ गई और सब पानी ठंडा हो गया । उस कुंड के मध्य में एक कमल प्रकट हुआ जिस पर कि वह भिक्षु विराजमान था ।

इस आश्चर्य्यमय घटना को देख कर नर्क के कर्मचारी राजा के पास दौड़े गये और उसे वहां का सब वृतांत बताया । परन्तु राजा ने कहा कुछ हो मैं तो वहां नहीं जा सक्ता । मैं वचन बद्ध हूं । यदि मैं गया तो मुझे भी पीड़ा दी जावेगी । तब उन लोगों ने कहा कि नहीं २ आप अपने वचनों का ख्याल न करके शीघ्रही वहां चलिये । आप को किसी प्रकार का कष्ट न होगा । नर्क के अन्दर प्रवेश करते ही उसको भिक्षु के दर्शण हुये वहां उसने राजा को धर्मोपदेश दिया । राजा को उसके उपदेशों पर विश्वास आया और उसने उसी समय अपने बनाये संसारिक नर्क को तुड़वा डाला । और अपने किये पर बड़ा पश्चाताप किया । इसी दिन से उसे बौद्ध धर्म के त्रिरत्नों में (बुद्ध, धर्म और संघ) में श्रद्धा उत्पन्न हुई ।

वह अकसर पत्र वृक्ष के नीजे जाता और वहां अपनी भूलों पर पश्चाताप करता था। और बौद्धधर्म की आठ आज्ञाओं के पालन करने का प्रयत्न करता था।

एक दिन रानी ने मंत्रियों से पूछा कि महाराज रोज़ कहां जाते हैं? उन्होंने सब वृतांत कह सुनाया। रानी को क्षोभ हुआ। उसने मौका देखकर राजा की गैर हाजरी में उस वृक्ष को कटवाडाला। जब राजा को यह हाल मालूम हुआ तब वह वहीं अचेत होकर गिर पड़ा। मंत्रियों ने उसके मुख पर पानी छिड़का। बहुत देर के बाद उसे होश आया। उसने उस वृक्ष के आस पास ईंट की दीवाल खींचदी और उस वृक्ष की जड़ में सौ मड़कों गाय का दूध डलवाया। वह वहीं पड़ा रहा और उसने यह प्रण किया कि यदि यह वृक्ष फिर से न ऊगेगा तो मैं भी यहां से कभी नहीं उठूंगा। इस प्रतिज्ञा के प्रताप से वह वृक्ष भी शीघ्र ही उमड़ आया और आज तक वह बढ़ता ही जाता है। इस समय वह प्रायः १०० हाथ ऊंचा है।

अध्याय तैंतीसवां.

गुरुपद पर्वत

यहां से तीन ली दाक्षण में चल कर यात्री गुरू पद पर्वत पर आये इस का दूसरा नाम कुक्कुटपद पर्वत है। यहां आज भी महाराज काश्यप जीवित वर्तमान हैं। उसने एक गुफा बनवाई और उस में एक छोटे से छिद्र द्वारा वह स्वयं प्रवेश कर गया। ऐसे छोटे छिद्र से कोई मनुष्य उस गुफा के अन्दर नहीं जा सक्ता। कुछ दूर चलने के बाद एक सूराख मिलता है, जहां कि काश्यप का शरीर वर्तमान है। इस सूराख के बाहर कुछ मट्टी पड़ी है, जिससे कि काश्यप ने अपना हाथ धोया था। यदि किसी मनुष्य को इस स्थान पर सिर दर्द मालूम हो तो वह इस मट्टी को अपने सिर पर लगा लेता है और उसे उसी क्षण आराम हो जाता है। इस पर्वत पर प्राचीन काल से आज तक अर्हत निवास करते हैं। श्राद्धालु लोग प्रति वर्ष इस

पर्वत पर जाकर काश्यप की पूजा करते हैं। जो मनुष्य श्रद्धा से आते हैं और जो अधिकारी रहते हैं वे इन अर्हतों के दर्शण भी करते हैं। रात्रि में वे प्रकट होते हैं और इनको उपदेश देते हैं, वार्ता लाप करते हैं और बाद में लोप हो जाते हैं।

इ पर्वत पर आताम्र (Hazels) खूब ऊगते हैं। जंगल में सिंह, शेर, और भेड़िये हैं। इस लिये यात्रियों को यहां सावधानी से चलना चाहिये।
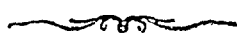
अध्याय चौंतीसवां

वारानसी।

फाहियान यहां से पाटलीपुत्र को वापिस आया। गंगा के तट पर पश्चिम की ओर चलकर वह इस स्थान पर पहुंचा। दस योजन पर उसको एक विहार मिला जिसका नाम इश-पतन-विहार था। यहां बुद्धदेव रहते थे और अब भी भिक्षु रहते हैं। उसी मार्ग पर बारह योजन चलने के बाद वह काशी नगरी में पहुंचा। नगर के उत्तर पश्चिम कोण में उसे मृगदाय विहार मिला। पूर्वकाल में यहां प्रत्येक बुद्ध निवास करते थे। इनके साथ रात्रि भर एक मृग निवास करता था।

जब कि श्री बुद्धदेव पूर्णज्ञान प्राप्त कर रहे थे, तब देवताओं ने आकाश से इनकी स्तुति की और बड़ी प्रसन्नता पूर्वक कहा कि आज से सात दिन के अन्दर शुद्धोधन के पुत्र सिद्धार्थ, जिन्होंने राजपाट का त्याग किया है और ज्ञानमार्ग का अवलम्बण किया है बुद्ध हो जावेंगे। ये वाक्य सुनतेही प्रत्येक बुद्ध निर्वाण को प्राप्त हुये। इस कारण इस विहार का नाम ऋषिमृगदाय पड़ा है। तत्पश्चात् लोगो ने यहां पर विहार बनवा दिया।

निर्वाण प्राप्त करने के वाद, बुद्धदेव ने चाहा कि वे कौदन्य और उसेक चार अनुयाइयों को (जो सब से पहिले शिष्य हुये थे, और वाद में बुद्धदेव को छोड़ कर चले आये थे) अपने धर्म में दीक्षित करें। परन्तु उन्होंने, यह वात जानकर निश्चय किया कि जिसने छै वर्ष तक कठोर तप किया, अत्याल्पाहार किया, और तब भी ज्ञान को प्राप्त नहीं हुआ वही गौतम, अपने शरीर. विचार, और जिव्हा को स्वतंत्रता दे, किस तरह ज्ञानी हो सक्ता है। वह शहर के लोगों से मिलता है, और अत्यंत साधारण जीवन व्यतीत करता है। अब वह किस प्रकार ज्ञानी हो सक्ता है? यह वात निश्चय कर लेना चाहिये कि आज जब वह. अपने सन्मुख आवे तो हम किसी प्रकार भी उस का सत्कार न करेंगे।

(परन्तु) उस स्थान पर जहां पांचो शिष्य एकाएक उठे थे और जहां उन्होंने आदर पूर्वक बुद्धदेव को प्रणाम किया था, जहां कि साठ कदम उत्तर में, पूर्व मुख बैठ कर श्री बुद्धदेव ने धर्म चक्र चलाया था और जहां कौदन्य और उस के चार अनुयाइयों को नव धर्म में दीक्षित किया था, जहां उत्तर में वीस कदम आगे, उन्होंने मैत्रेय के विषय में भविष्यवाणी की थीं (कि वह आगे बुद्ध होंगे); और उस स्थान पर जहां कि दक्षिण में पचास कदम के फासले पर नागराज **ऐलापत्र** ने बुद्धदेव से पूछा था कि मैं इस नाग शरीर से कब मुक्त होऊंगा—इन सब स्थानों पर स्तूप बनाये गये जो आज तक रक्षित हैं। विहार में दो संघाराम हैं जहां कि भिक्षुक गण निवास करते हैं।

मृगदाय विहार से तेरह योजन दूरी पर कौशम्बी राज्य है। यहां के विहार का नाम **गोचिरवन**[१] है। यहां पूर्वकाल में बुद्धदेव रहे थे। अब यहां हीनयान साम्प्रदाय के अनुयायी भिक्षुक रहते हैं।

यहां से आठ योजन पूर्व में वह स्थान है, जहां कि बुद्धदेव

१. यह एक वैश्य था जिसने बुद्धदेव का यह विहार दान दिया था।

ने यक्ष अलवक्क को नव धर्म में दीक्षित किया था। उस स्थान पर और वहां जहां पर कि वे ध्यानमग्न टहला करते थे स्तूप बनाये गये हैं। यहां पर एक संघाराम भी है जिसमें प्राय: एक सहस्र भिक्षु रहते हैं।

अध्याय पैंतीसवां

दक्षिण देश और कपोत संघाराम.

यहां से दो सौ योजन पर दक्षिण देश है, जहां काश्यप बुद्ध की स्मृति में एक संघाराम है। यह पर्वत काट कर बनाया गया है। इस में पांच मन्ज़िलें हैं। पहिले मे हाथी का स्वरुप बना है—जिसमें ५०० कमरे हैं। दूसरे का स्वरुप सिंहका है। इसमें चार सौ कमरे हैं। तीसरा घोड़े का स्वरुप लिये है। इसमें ३०० कमरे हैं। चौथा बैल का इसमें २०० कमरे हैं। और पांचवां कपोत का, इसमे १०० कमरे हैं। पांचवे मंज़िल के शिखर पर, पानी का एक झिरना है, जो कि पांचों मंजिलों से घूमता हुआ नीचे को गिरता है। हर एक कमरे में, पत्थर काट कर, रोशनी के लिये खिड़की निकाली गई है। किसी भी कमरे में अंधेरा नहीं है। चारों किनारों पर पत्थर काट कर ऊपर जाने को सीढ़ियां बनादी गई हैं। अत्र आदमियों को कदम बकदम चलना पड़ता है। इस लिये कई अन्य सीढ़ियां काटी गई हैं। परन्तु पहिले एकही सीढ़ी से पुराने समय के ऊंचे पूरे लोग, अपने २ स्थानों पर चढ़ जाते थे। इसी लिये इस संघाराम का नाम पॅवत सघारामं है। यहां पर सदेव अहत लोग निवास करते हैं।

आस पास इसके पहाड़ी जंगल है। जहां न मनुष्य बसेत हैं न जहां खेती होती है। पर्वत से बहुत दूरी पर कुछ देहात हैं जहां के लोग

नास्तिक हैं। और वे धर्म के महत्व को नहीं समझते। यहां पर ब्राह्मण आदिक धर्म के अनुयायी शिक्षा प्राप्त करने आते हैं। इस देश के लोग सदा मनुष्यों को उड़ते हुये यहां पर आते देखते हैं। एक समय कुछ जिज्ञासु इस संघाराम की ओर आ रहे थे जब कि ग्रामीण लोगों ने कहा कि तुम उड़कर क्यों नहीं जाते। उसी क्षण उन लोगों ने उत्तर दिया कि अभी हमारे पर नहीं बने। दक्षिण का मार्ग बड़ा कठिन है और यह देश भी सब से अलग स्थित है। यहां सड़कों की व्यवस्था ठीक नहीं है। परन्तु जो मनुष्य इस देश में भ्रमण करना चाहते हैं वे यदि देश के राजा को कुछ आर्थिक भेट दें तो वह इनका प्रबंध करा देता है। और स्थान २ पर मनुष्य बदलते रहेंगे। डाक व्यवस्था के समान वे शीघ्रही निश्चित स्थान पर पहुंच जावेंगे। फाहियान उस देश में न जासका। जो कुछ उस ने इस देश के विषय में सुना वह लिख दिया है।

अध्याय छत्तीसवां

पाटलीपुत्र में प्रत्यागमण

बनारस से पुनः पूर्व दिशा में चलकर यात्रीगण पाटलीपुत्र मे आये। फाहियान का प्रथम उद्देश यह था कि वह विनयपिताका धर्मशास्त्र की मूल पुस्तकों की खोजकरे। उत्तरीय भारत के भिन्न २ देशों में उसने आचार्य्यों को उस की जबानी शिक्षा देते हुये देखा था, परन्तु उसको वहां भी मूल पुस्तक न मिल सकी। इस लिये वहां से वह मध्य देश तक चला आया।

यहां महायान संघाराम १ में उसको विनय शास्त्र की एक प्रति मिली जिसमें महासंघिका के वे नियम दिये हुये थे, जो बुद्धदेव के जीवित काल में प्रथम महासभा में निश्चित हुये थे। प्रथम कापी तो जीतबन विहार के अध्यक्ष के हाथ में है। भिन्न २ अठारह साम्प्रदायों में भी ये ही नियम पाले जाते हैं। थोड़ा बहुत नाममात्र को उनकी आज्ञाओं में भेद है। यह

प्रति प्रमाणीय और सभाष्य है ।

बाद में उसे ६-७ हजार गाथाओं की एक प्रति और मिली । इस प्रति में सरवास्तिवाद साम्प्रदाय के नियम लिखे थे । ये नियम बहुधा जबानी ही याद किये जाते हैं और लिखे नहीं जाते । यहां की जनता के पास उसे 'सम्युक्त अभिधर्म हृदय शास्त्र' मिला । इसमें भी ६-७ हजार गाथायें थी । यहां २५०० गाथाओं का एक सूत्र, एक अध्याय परीनिर्वाण वैपुल्य सूत्र का जिसमें ५००० गाथायें थीं, और महा संघिका अभिधर्म ये सब ग्रंथ प्राप्त हुये ।

इस सफलता के कारण वह यहां तीन साल तक ठहरा रहा । और यहां पर वह संस्कृत पुस्तकें और संस्कृत भाषा पढ़ता था और विनय के नियमों को लिखता जाता था ।

जब टाऊ चिंग मध्यदेश में आया और उसने देखा कि किस उत्तम रीति से यहां धर्म का पालन होता है तब उसको अपने देश की अनिश्चित और अपूर्ण धार्मिक स्थित पर शोक हुआ । यहां उसने यह आन्तरिक अभिलाषा प्रकट की कि बुद्धतत्व प्राप्त करने तक मेरा जन्म भरत खंड में ही हो । वह भारत वर्ष में ही रहा और चीन को वापिस नहीं गया । फाहियान जिसका उद्देश विनय धर्म शास्त्र को पढ़ कर और उसको अपने साथ ले जाकर चीन देश की धार्मिक स्थित को सुधारना था यहां से अकेला चीन देश को वापिस चला गया ।

१. देखो अध्याय २७ वां

अध्याय सैंतीसवां

चम्पा और ताम्रलिप्ति

गंगा के मार्ग से अठारह योजन पूर्व दिशा में चलकर फाहियान दक्षिण तट पर स्थित चम्पा के विस्तृत राज्य में आया । यहां पर उन स्थानों पर जहां बुद्धदेव निवास करते थे स्तूप बने

हुये हैं। उनके पास ही साधुओं के रहने के स्थान हैं। पूर्व दिशा में पचास योजन चलकर वह ताम्रलिप्ति देश में आया। इसकी राजधानी एक सामुद्रिक बन्दर पर स्थित है। इस देश में २२ संघाराम है। इन में भी साधुगण निवास करते हैं। बौद्धधर्म यहां भी उन्नत दशा में है। यहां फाहियान दो वर्ष तक ठहरा रहा। यहां ही उसने बहुत से सूत्रों की नकल की और उनके सम्बंध के चित्र खींचे।

तत्पश्चात वह एक व्यापारी जहाज में बैठकर दक्षिण पश्चिम की ओर समुद्रमार्ग से रवाना हुआ। जाड़े का ऋतु था और वायु भी अनकूल थी। चौदह दिन की निरन्तर यात्रा के बाद वह सिंहल द्वीप पहुंचा। ताम्रलिप्ति से यह स्थान ७०० योजन की दूरी पर है।

यह एक बड़ा द्वीप है। इसका विस्तार उत्तर दक्षिण तीस योजन और पूर्व पश्चिम पचास योजन है। इसके पूर्व और उत्तर दिशा में प्रायः सौ द्वीप अवश्य होंगे। जो एक दूसरे से दस बीस ली से लेकर दो सौ ली तक के फासले पर स्थित हैं। इन द्वीपों में मोती और रत्नादिक मिलते हैं। एक द्वीप का वर्ग मील दस ली होगा। यहां के राजा का इस विषय में अच्छा प्रबंध है कि कोई भी मनुष्य यहां के रत्न अन्यत्र नहीं ले जासक्ता। ढूंडकर निकाले हुये दस मोतियों में से तीन मोती राजा के हिस्से में आते हैं।

अध्याय अड़तीसवां

सिंहल द्वीप

आदि काल में यहां मनुष्यों का निवास नहीं था। केवल प्रेत और नागादिक ही यहां रहते थे। इन्हीं के साथ भिन्न २ देशों के निवासी व्यापार करते थे। व्यापार के समय में प्रेत दिखाई नहीं देते थे। वे व्यापार की वस्तुओं पर मूल्य का चिट लगाकर रख देते थे। इनके आधार

पर व्यापारी माल खरीदते थे। व्यापार क्षेत्र बढ़ने से चारों ओर इस द्वीप का नाम प्रख्यात होगया। यहां पर आसपास के और दूर २ के निवासी आकर बसने लगे। कुछ समय में एक राष्ट्र तय्यार होगया। यहां की जलवायु समशीतोष्ण और सुहावनी है। गर्मी और जाड़े के ऋतु में अधिक भेद प्रतीत नहीं होता। यहां की वनस्पतियां और वृक्षादिक सदा हरि ाले रहते और लहलहाते हैं।

जब श्री बुद्धदेव दुष्ट नागादिक को अपने ऐश्वरीय बल से वश में करने के लिये आये थे, तब से उनके पैर का चिन्ह नगर की उत्तर दिशा में अंकित है। यहां के राजा ने उस स्थान पर चार सौ हाथ ऊंचा एक स्तूप निर्माण कराया। उसे सोना, चांदी, और अनेक मूल्यवान मणि मुक्तादिक से सुशोभित कराया। इस स्तूप के निकट उसने अभयागिरि नामक संघाराम निर्माण किया। इस संघाराम में पांच हज़ार साधु निवास करते हैं। यहां बीस हाथ ऊंची श्री बुद्धदेव की एक नील मणि की मूर्ति है। वह स्वर्ण खचित और सप्त रत्न जटित है। यह मूर्ति अत्यंत भावमान है। इसका वर्णन नहीं हो सक्ता। इसके दाहिने हाथ की हथेली में एक अमूल्य मुक्ता जड़ा हुआ है।

फाहियान को हानदेश परित्याग किये बहुत वर्ष हो चुके थे। इस समय जिन लोगों से उसका परिचय था वे सब परदेशी थे। हानदेश के परिचित पर्वत, या नदी, अथवा वृक्ष या पौदों पर बहुत वर्षों से उसकी द्रष्टि ही नहीं पड़ी थी। उसके सहवासीगण एक २ करके अलग हो चुके थे। कुछ मृत्यु को प्राप्त हुये, कुछएक भिन्न २ मार्ग को चले गये। इस समय वह केवल अकेला था। किसी परिचित पुरुष की छाया को भी वह देख नहीं सक्ता था। उसके हृदय में अब क्षोभ और कष्ट बोध होने लगा। उसकी उत्कट इच्छा चीन देश को वापिस जाने की हुई। अपनी मातृभूमि के दर्शण को वह लालायित हो गया। मात्रभूमि के दर्शण की इच्छा दिन २ बढ़ती गई। अकस्मात एक दिन एक चीनी यात्री को उसने इस मंदिर में देखा। वह चीनी यात्री मूर्ति के सन्मुख उपहार स्वरुप एक चीनी पंखा चढ़ा

रहा था। इसे देखते ही एकायक फाहियान के नेत्रों में आसू भर आये। और उस का हृदय गदगद हो गया।

इस द्वीप के एक राजा ने मध्य भारत से पत्र वृक्ष (पीपल का वह वृक्ष जहां श्री बुद्धदेव ने पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया था। इस को बोधि द्रुम भी कहते हैं) की एक शाखा मंगवा कर श्री बुद्धदेव के मंदिर के निकट लगाया था। इस शाखा से एक सौ हाथ ऊंचा एक विशाल वृक्ष उत्पन्न हुआ। परन्तु यह वृक्ष दक्षिण पूर्व दिशा में अधिक झुक गया। राजा को यह सन्देह हुआ कि कहीं यह गिर न जावे। उसने ८-९--विघत परिमान का एक दंड उसको सम्भालने के लिये लगा दिया। ठीक उसी स्थान पर उस वृक्ष की एक शाखा प्रथ्वी में प्रवेश करके पुनः धरती के ऊपर आई। यह प्रायः चार विघत चौड़ी थी। जिस दंड के सहारे यह वृक्ष खड़ा था वह इस समय खंडित हो चुका था परन्तु श्रद्धालु धर्म प्रेमियों ने उसे वहां से नहीं हटाया। वृक्ष के नीचे एक विहार निर्मित है। इसमें भी श्री बुद्धदेव की एक मूर्ति स्थापित है। यति गण और सर्व साधारण मनुष्य दोनों ही इस मूर्ति की प्रतिष्ठा करने में नहीं थकते। नगर में भी श्री बुद्धदेव के दांत पर एक विहार निर्मित है। इन दोनों विहारों में सात प्रकार के रत्न जड़े हुये हैं।

राजा परम पवित्र धर्म (बौद्धधर्म) का अनुयायी है। वह ब्राह्मण धर्म के नियमों से बद्ध नहीं है। अधिवासी गण धर्म में विश्वास रखते हैं। उनकी श्रद्धा सराहनीय है। नियमित राज्य स्थापित होने के बाद यहां कभी अकाल (दुर्भिक्ष) नहीं पड़ा। यहां राज्य क्रान्ति के उपद्रव भी नहीं हुये। साधुगण के साधारण भंडार ग्रह (कोष) में बहुमूल्य मणि रत्न हैं। एक समय इस देश का एक राजा एक कोषागार में गया। वहां पर चारों ओर बहु मूल्य मोतियों को देख कर वह प्रलोभित हुआ और उनको वहां से हटाकर अपने खजाने में लेजाने की इच्छा उसने प्रकट की। इस विचार के हृदय में आते ही वह बेहोश होगया। तीन दिन तक वह अचेतन दशा में पड़ा रहा। जब उसे होश आया तब वह उसी क्षण यतियो के पास गया और अपने निन्दनीय विचार के

लिये पश्चाताप करने लगा। उनसे क्षमा मांगी। भूमि पर माथा टेका। उसने यह नियम बनाया कि भविष्य में कोई भी राजा वहां न जासके। वहां पर ऐसे भिक्षु को जाने की आज्ञा नहीं है, जिस को साधुवृत्ति धारण किये चालीस वर्ष नहीं हुये। जिस साधु ने तृष्णा पर विजय नहीं पाया है, उसे यहां के संघारामों के खजाने नहीं बताये जाते।

नगर में अनेक वैश्य और अरबदेश के व्यापारी निवास करते हैं। इनके घर सुन्दर और विशाल हैं। नगर की सड़कें और मार्ग पथ अच्छी दशा में हैं। नगर की चार प्रधान सड़कों पर धर्म मन्दिर स्थापित हैं। उनमें अष्टमी, *चतुर्दशी पूर्णिमा और अमावस्या को बड़े समारोह से पूजन होता है।* इन अवसरों पर मन्दिरों में वेदी निमर्ण करते हैं। चारों दिशाओं के यति और साधारण व्यक्ति एकत्रित होकर धर्मोपदेश श्रवण करते हैं। अधिवासियों का कथन है [इस देश में प्रायः आठहजार साधुगण निवास करते हैं। इनकी जीविका का प्रबंध साधारण कोष से होता है। इसके सिवाय राजा भी नगर के अन्य २ स्थानों पर पांच छह हजार साधुओं के भोजनादि का प्रबन्ध करता है। जब भिक्षुओं को जरूरत पड़ती है तब वे भिक्षा पात्र लेकर निश्चित स्थान पर उपस्थित हो जाते हैं। वहां उनको उनके भिक्षा पात्र के भरकर भिक्षा मिलती है। उसको लेकर वे अपने २ स्थानों पर चले जाते हैं।]

तीसरे महीने में श्री बुद्धदेव के दांत की पूजा होती है। उसे बाहर निकाला जाता है। दस दिन पहिले राजा एक बृहत् हाथी पर एक सुवक्ता को बैठाल कर उस से यह घोषणा कराता है कि बौद्धसत्व तीन असंख्य कल्प तक संसार के उपकार का कार्य करते रहे। उन्होंने अनेक प्रकार के क्लेश सहन किये। राज्य, नगर, स्त्री, पुत्र और सब प्रकार के संसारिक वैभवों का त्याग किया। अपने नेत्रों को निकलकर दूसरों के कल्याणार्थ दान दिया। अपना सिर तक दूसरों के हितार्थ दान दिया। अपना शरीर एक भूखी शेरनी को खिला दिया। अपना मांस और अस्ति प्रदान करने में उन्होंने किसी प्रकार का क्षोभ नहीं किया। इस प्रकार के अवर्णनीय

दुख महा प्रभु बुद्ध सर्व प्राणीमात्र के कल्याणार्थ सहन करते रहे। इसी प्रकार बुद्धतत्व प्राप्त करने पर भी वे संसार में ४५ वर्षों तक धर्म का उपदेश देते रहे। उन्होंने अनाथों को आश्रय दिया। पतितों का उद्धार किया। समस्त संसार के लिये, प्राणीमात्र के लिये, दया और त्याग का सदा चमकता हुआ आदर्श वे छोड़ गये और अपना कार्य सम्पादन करने के बाद वे परिनिर्वाण को प्राप्त हुये। १४९७ वर्ष से वह जगत ज्योति लुप्त और अदृश्य है। इस कारण संसारी प्राणी सदा मलिन और दुखी रहते हैं। दस दिन के बाद श्री बुद्धदेव के दांत का जुलूस निकाला जावेगा। उस जुलूस को अभयागिरि विहार तक लेजावेंगे। साधु व साधारण व्यक्ति को चाहिये, जिन्हें पुण्य प्राप्त करना है, कि वे राज पथ को व नर की प्रत्येक गली को सुसंस्कृत व सुसाज्जित करें। और पवित्र दंत के पूजन और सन्मानार्थ पुष्प व गंध का संग्रह करें। इस प्रकार की घोषणा नगर भर में फेरी जाती है। तदुपरांत राजा प्रधान मार्ग के दोनों तरफ बुद्धसत्व के भिन्न २ पांच सौ स्वरूपों की मूर्तियां स्थापित करता है। इन से मार्ग को सुशोभित करता है। कहीं सुदान, कहीं शाम, कहीं हस्तिराज, कहीं मृगरूप, कहीं अश्वरूप धारण की हुई बुद्धसत्वों की मूर्तियों से वह मार्ग को सुसज्जित करता है*। ये मूर्तियां उज्ज्वल और सुचित्रित रहती हैं। उनमें सुन्दर भाव झलकता है। वे जीवित प्रतीत होती हैं। तत्पश्चात् बुद्ध देव का दंत बाहर निकाला जाता है। उसको जुलूस के साथ राजपथ से निकालते हैं। मार्ग में स्थान २ पर चढ़ोत्री भेट की जाती है। इस प्रकार बड़े समारोह के साथ वह अभयागिरि विहार के बुद्ध मन्दिर में लाया जाता है। वहां साधु व साधारण व्यक्ति दलबद्ध एकत्रित रहते हैं। वे गन्ध द्रव्य जलाते हैं। दीपक प्रकाशित करते हैं। नव्बे दिन तक वे रात दिन इसकी पूजा करते हैं। इसके बाद उस दंत को नगर के विहार में वापिस लाते हैं। शुभ तिथियों को उस विहार का द्वार खुला रहता है और नियमानुसार वहां पूजन होता है।

---

*जातक कथाओं में बुद्धदेव के अनगनित शरीरों का वर्णन है। प्रत्येक जन्म में बुद्धदेव ने आदर्शनीय परोपकार का कार्य किया था।

अभयागिरि विहार से चालीस ली पूर्व में एक पहाड़ी है। इस पर एक विहार है। इसका नाम चैत्य विहार है। यहां दो सौ साधु रहते हैं। इनमें धर्मगुप्त नामक एक विद्वान श्रमण रहता है। समस्त राज्य उसकी प्रतिष्ठा करता है। चालीस वर्ष से अधिक होगये कि वह इस पर्वत के कक्ष में वास करता है। वह हृदय का इतना दयालु है कि उसकी दया के प्रभाव से उसके निवासस्थान में सर्प और चूहे साथ रहते हैं और एक दूसरे का अनिष्ट नहीं करते।

अध्याय उन्चालीसवां

महा विहार

नगर से सात ली दक्षिण में एक विहार है। यह महाविहार के नाम से प्रसिद्ध है। इस विहार में तीन हजार साधु निवास करते हैं। यहां एक यति रहता था। वह विनय पितक के नियमों का यथोचित पालन करता था और धर्मपरायण था। उसको लोग अर्हत कहते थे। जब उसका अन्त काल निकट आया तब उस देश का राजा उसके पास आया। भिक्षुगण को एकत्रित करके उसने पूछा कि क्या इस साधु ने ज्ञान प्राप्त किया है। उन्होंने कहा हां वह अर्हत बन गया है। उसकी मृत्यु के बाद राजा ने उस के शरीर का नियमानुसार संस्कार किया। विहार से चार पांच ली पूर्व में तीस वर्ग हाथ से अधिक और उतनी ही ऊंची चिता तय्यार कराई गई। उसके शिखर पर चन्दन और अन्यान्य सुगान्धित काष्ट रखे गये। चिता के चारों ओर ऊपर चढ़ने के हेतु सीढ़ियां बनाई गईं। श्वेत केशवस्त्र से उन्होंने भिक्षु के शव को बार बार लपेटा। तदुपरांत उन्होंने शवाधार निर्माण किया। यह देखने में चीन के शवाधार के समान मालूम होता था। परन्तु उस पर दैत्य और मछली की मूर्तियां नहीं थीं।

शव दाह के समय राजा और तद्देशीय सहस्रों व्यक्तिगण दलबद्ध उस पर पुष्प और गन्धद्रव्य की वर्षा करने लगे। उस समय जब कि लोग शवाधार को श्मशान भूमि तक ले जा रहे थे राजा स्वयं उनके पीछे पुष्प व गन्धद्रव्य फेकता चला जा रहा था। जब यह सब क्रिया समाप्त हो चुकी तब शव चिता पर रखा गया। तुलसी का तेल डालकर उसमें अग्नि लगा दी गई। जब चिता प्रज्वलित हो गई तब प्रत्येक व्यक्ति ने प्रेम पूर्वक अपने शरीर का वस्त्र, या पंखा, या छाता उस चिता पर फेकना आरम्भ कर दिया। चिता और भी तेज़ दहकने लगी। जब अग्नि शांत हुई और शरीर भस्म हो चुका तब सबोंने उस अर्हत की हड्डियों को एकत्रित किया और उस पर एक स्तूप निर्माण करना चाहा। फाहियान इस श्रमण को जीवित न देख सका। जब वह उस स्थान पर पहुंचा तब उसका शरीर जलाया जा रहा था।

उस समय, राजा, जो कि बौद्ध धर्म का पक्का अनुयायी था एक नवीन बिहार बनवाना चाहता था, जिसमें साधुगण भली भाँति रह सकें। उसने उनकी एक वृहत् सभा एकत्रित की। उनको चांवल का भोज दिया गया। बाद में उस ने अत्युत्तम बैल दान दिये। उनके सींघ स्वर्ण के पत्रों से जड़े थे। एक सुनहरी हल भी वहां लाया गया। राजा ने अपने हाथ से उस स्थान के चारों ओर हल चलाया जहां पर कि वह विहार बनवाना चाहता था। तब उसने साधुसंघ को उस स्थान की आबादी, खेत, और मकान का अधिपत्य प्रदान किया। यह दान ताम्बे के पत्र पर लिखा गया ताकि भविष्य में कोई उन पर अपना अधिकार न बता सके न हस्तक्षेप कर सके।

इस देश में फाहियान ने एक साधु को एक व्याख्यान देते सुना। उसका सारांश यह था:— बुद्धदेव का भिक्षापात्र पहिले वैशाली में था। परन्तु अब वह गान्धार देश में है। कुछ शताब्दियों के बाद वह तुखारा में जावेगा। फाहियान को निश्चित वर्ष याद नहीं रहे। यद्यपि उस साधु ने समय भी बतलाया था। क्रमानुसार वह भिक्षापात्र कुछ शताब्दियों तक खोतीन में, फिर खराचार में, वहां से हान देश में, फिर सिंहल द्वीप में

जावेगा और अंत में मध्यभारत में वह भिक्षापात्र वापिस आजावेगा। वहां से वह पात्र तुपित स्वर्ग में पहुंचेगा। बौद्धसत्व मैत्रेय उसको देख कर प्रेम के साथ कहेगा शाक्यमुनि बुद्ध का पात्र यहां आगया। स्वर्ग के सब देव उसकी पूजा करेंगे। वह स्वयं पुष्प गंध चढ़ावेगा। इसके बाद वह जम्बूद्वीप में वापिस आजावेगा। वहां से वह सामुद्रिक नागराज के प्रासाद में जावेगा। जब मैत्रेय पूर्णज्ञान प्राप्त करके भावी बुद्ध के रुप में अवतार लेंगे तब उस पात्र के चार भाग पुनः अलग २ हो जावेंगे। यहां से वह सुदर्शन पर्वत पर चला जावेगा। यही इस का आदि स्थान है। मैत्रेय के बुद्ध होने के बाद ही चारों देवराज बुद्ध की स्तुति करेंगे। इस भद्र कल्प के एक हजार बुद्ध सब इसी पात्र का इस्तैमाल करेंगे। और इस पात्र के गायब होतेही बौद्धधर्म संसार से गायब हो जावेगा। उस समय मनुष्य अल्पवयी होंगे। यहां तक कि मनुष्य बड़े २ पाप कर्म करेंगे। संसार में चांवल, घृत और तेल कुछ भी प्राप्त न होगा। मनुष्यों के हाथ लगाने से घास और वृक्षों का रंग काला पड़ जावेगा। पते तलवार की धार के समान तेज़ हो जावेंगे। इन्हीं से वे एक दूसरे का विनाश करेंगे। जो धर्मात्मा और ज्ञानी होंगे वे पर्वतों पर चले जावेंगे। और जब दुष्टगण आपुस में लड़ कर मर जावेंगे तब वे पर्वतों से नीचे आवेंगे और आपुस में कहेंगे कि पाप कर्म के कारण मनुष्य का जीवन इतना अल्प हो गया है। आवो हम सब सत्य और शुभ कर्मों की ओर प्रवृत्त होवे। दया का प्रचार करें। धर्म का पूर्ण रूप से पालन करें। जब सब लोग धर्म का पालन करने लगेंगे तब मनुष्य की आयु भी बढ़ जावेगी। यहां तक कि वह आठ हज़ार वर्ष तक जीवित रह सकेगा। मैत्रेय शाक्यमुनि के अनुयाइयों की रक्षा करेगा। बाद में उन लोगों को धर्म पथ बतलाया जावेगा जो नवदीक्षित हैं; जिन्होंने बुद्ध, धर्म और संघ की शरण ली है। पांच निषेधकारी आज्ञाओं का जिन्होंने उलंघन किया है और आठ आज्ञाओं का पालन किया है। अंत में वह उनकी रक्षा करेगा जिनके पूर्व के संस्कार प्रबल होंगे और जो धर्म पथ पर चल सकेंगे।

यह उस व्याख्यान का सारांश था। फाहियान का खयाल था कि यह कोई धर्म सूत्र है। वह इसे लिखना चाहता था। परन्तु उस साधु ने कहा कि यह कोई सूत्र नहीं है। मेरे हृदय के विचार हैं।

अध्याय चालीसवां

फाहियान सिंहलद्वीप में दो वर्ष रहा। पाटलीपुत्र में उसे जो धर्मग्रन्थों की हस्तलिखित प्रतियां प्राप्त हुई थी उनके अलावह यहां उसे महासंघिका सम्प्रदाय के नियमानुसार लिखी हुई विनय पितक की एक प्रति, सम्युक्त संचय पितक और दीर्घगम अथवा सम्युक्त सूत्रों की प्रतियां प्राप्त हुईं। चीन देश के निवासियों ने इन अमूल्य ग्रन्थों का नाम भी नहीं सुना है। इन सब संस्कृत ग्रन्थों को लेकर वह एक बड़े व्यापारी जहाज में बैठकर अपने देश को वापिस लौटा। इस जहाज़ में दो सौ मनुष्य बैठे थे। इसके साथ एक छोटा सहायक जहाज़ भी और था। तीन दिनतक वे अच्छी तरह पूर्व की ओर निर्विघ्न चले गये। वायु भी अनुकूल थी। परन्तु बाद में उनको भयानक आंधी का सामना करना पड़ा। जहाज में एक सूराख था। उसमें पानी भरने लगा। व्यापारी छोटे जहाज में जाना चाहते थे। परन्तु जो मनुष्य कि उस जहाज पर थें वे इनकी अधिक संख्या को देखकर डरे। उन्होंने उस रस्से को काट डाला जिससे दोनों जहाज संयुक्त थे। व्यापारी सहसा डर गये। उन्होंने भारी २ बोझों को समुद्र में फेकना आरंभ किया। फाहियान ने भी अपने पानी के बरतन और सुराही मय और सामान के समुद्र के हवाले किया। उसको यह संदेह होगया कि कहीं व्यापारी उसकी पुस्तकें और मूर्तियां समुद्र में न फेंक दें। अतएव वह हृदय में अवलोकितेश्वर की प्रार्थना करने लगा। वह कहने लगा हे देव अपनी अलौकिक शक्ति से तू हमारी रक्षा कर। मैंने अपना जीवन चीन देश में धर्मज्ञान के प्रसार के हेतु अर्पण कर दिया है। मुझे अपने देश में सुरक्षित पहुंचा दे।

वह भयानक तूफान रात दिन जारी रहा। तेरहवें दिन जहाज एक द्वीप के तट पर पहुंचा। वहां वह जहाज सुधारा गया और यात्रा पुनः आरंभ हुई। समुद्र के आस पास किनारों पर डाकुओं के नगर बसे हैं। ये लूट मार पर अपना जीवन व्यतीत करते हैं। समुद्र का छोर नहीं मिलता। यह विस्तृत क्षेत्र के समान दिखाई देता है। पूर्व अथवा

पश्चिम का पता नहीं लगता। सूर्य चन्द्रमा और तारागणों को देख कर ही दिशा का ज्ञान होता है। बसंत के दिनों में, और कुहराव धुन्धकार के समय हवा के प्रवाह से ही जहाज अनिश्चित दिशा में चला जाता है। अंधेरी रात्रि में केवल लहरें ही दिखाई देती हैं। व्यापारी अत्यंत भय ग्रासित थे। वे कहां जा रहे थे, इसका उनको कुछ भी पता नहीं था। समुद्र अथाह और अत्यंत गहरा था। लंगर डालने को कोई स्थान द्रष्टि गोचर नहीं होता था। बादल साफ होने पर उनको दिशा का ज्ञान हुआ। यदि जहाज किसी छुपे हुये चट्टान से टकराता तो उसके बचने की कोई उम्मीद नहीं थी।

इस प्रकार नब्वे दिन की यात्रा के बाद वे जावा द्वीप के तट पर पहुंचे। यहां भिन्न २ प्रकार के नास्तिक, भ्रममूलक और ब्राह्मण धर्म का प्रचार है। यहां के लोग बौद्धधर्म के सिद्धान्तों से सर्वथा अपरिचित हैं। यहां फाहियान पांच मास तक ठहरा रहा। तदुपरांत वह एक दूसरे बड़े व्यापारी जहाज में बैठ कर आगे बढ़ा। इसमें भी प्रायः दोसौ व्यापारी थे। चौथे मास के सोलहवें दिन वे पचास दिन की सामग्री साथ ले वहां से रवाना हुये।

यात्रियों ने यहां से उत्तर पूर्व दिशा में प्रस्थान किया। उन्होंने कवांगचाऊ पहुंचने का निश्चय किया। एक महीने बाद उनको पुनः एक तूफान का सामना करना पड़ा। फाहियान ने फिर इस समय अवलोकितेश्वर की प्रार्थना की। उसकी कृपा से प्रातः काल तक वे सुरक्षित रहे। उस जहाज में कुछ ब्राह्मण भी थे। उन्होंने आपुस में निश्चय किया कि इस जहाज में इस श्रमण (फाहियान) के रहने से हम लोगों को यह भयानक आपत्ति उठाना पड़ रही है। इस भिक्षु को किसी द्वीप के किनारे छोड़ दो। एक मनुष्य के लिये इतने मनुष्यों को संकट में रखना न्याय संगत नहीं है। फाहियान को इस जहाज में एक श्रद्धालु यात्री मिल गया था। उसने इन ब्राह्मणों से कहा कि यदि तुम इसे मार्ग में अकेला छोड़ देना चाहते हो तो मुझे भी वहीं उतार दो। यदि तुम ऐसा न करोगे तो चीन देश पहुंचने पर मैं यह सब अन्याय युक्त वृतांत राजा को सुनाऊंगा। राजा बौद्धधर्मावलम्बी है। वह अवश्य तुम्हें दंड देगा। यह

सुनतेही वे सब भयभीत हो गये और उन्होंने इस विचार का परित्याग किया।

सत्तर दिन इस यात्रा में व्यतीत होगये। परन्तु कवांगचाऊ राज्य नहीं आया। यात्रा की सब सामग्री समाप्त हो चली। पानी भी खतम हो चला। यहां तक कि वे समुद्र का जल अपने इस्तैमाल में लाने लगे। उनको सन्देह हुआ कि वे मार्ग भूल गये हैं। शीघ्र ही उन्होंने जंहाज को उत्तर पश्चिम दशा में चलाना आरम्भ किया। और बारह दिन की निरन्तर यात्रा के बाद वे चांगकवांग के राज्य की सीमा पर पहुंचे। यहां उन्हें पीने योग्य पानी मिल सका। उत्तम वनस्पति मिली। अपने देश को देख उनका हृदय आनन्द से भर गया। यहां उन्होंने दो शिकारियों को देखा। फाहियान ने उनसे चीनी भाषा में कुछ प्रश्न किये। उन्होंने उत्तर दिया कि हम बुद्धदेव के अनुयायी हैं। तब उसने पूछा कि तुम इधर क्या तलाश कर रहे हो। परन्तु इसका उन्होंने झूठा उत्तर दिया (शिकार खेलना बौद्धधर्म के नियमानुसार वर्जित है)। उन्हीं शिकारियों से यह पता लगा कि यह देश (चांगकवांग) सिंग चाऊ राज्य के अन्तर्गत है। यह सुनकर व्यापारि प्रसन्न हुए। उन्होंने कुछ द्रव्य और माल राजा को भेंट देने के हेतु एकत्रित किया।

यहां का शासन-कर्ता बौद्ध धर्मावलम्बी था। जब उसने सुना कि उसके राज्य में एक श्रमण आया हुआ है और वह अमूल्य ग्रन्थ और मूर्तियां भारत वर्ष से लाया है तब वह शीघ्रही समुद्र के तट पर उपस्थित हुआ। बहुतसी सेना के साथ उसने श्रमण फाहियान का स्वागत किया। उससे प्रार्थना की गई कि वह राजधानी में चले। फाहियान राजधानी में पहुंचा। यहां उसका यथोचित सत्कार हुआ। वह यहां आठ मास तक ठहरा रहा। तत्पश्चात वह चांगगान को जाकर अपने साथी श्रमणों से मिलना चाहता था, परन्तु जिस कार्य को उसने अपने हाथ में लिया था उसकी जरूरत का खयाल करके वह नानकिन की ओर चला गया और वहां के श्रमण गण के साथ उसने धर्म के गूढ़ तत्वों पर वार्तालाप किया। और उन्हें सूत्र और विनय

की वे प्रतियां बताईं जिन्हें वह भारत वर्ष से लाया था।

चांगगान से मध्यदेश आने में छै वर्ष व्यतीत हुये थे। छै वर्ष तक वह उस देश के भिन्न २ स्थानों में घूमता रहा। वापिस चीन आने में उसे तीन वर्ष लगे। अर्थात इस यात्रा में उसके जीवन के पन्द्रह वर्ष व्यतीत हुये। कुछ कम तीस देशों का उसने प्रवास किया। गोवी के मरुस्थल से उपजाऊ सुन्दर भारत भूमि के साधुओं तक की निश्चल प्रभावशाली मूर्ति का वर्णन इस लेखनी से नहीं हो सक्ता। अपने देश के श्रमणगण की अज्ञानदशा पर दया प्रकट करके और अपनी कठिनाइयों का खयाल न करके वह इतनी दूर का सफर. पूरा कर सका। बुद्ध, धर्म और संघ की असीम कृपा से वह ऐसा करने में समर्थ हुआ। त्रिरत्नों ने सदा उसकी सहयता की, कठिनाइयों में उसको सुरक्षित रखा। इसी कारण वह अपनी यात्रा का सांक्षिप्त वृतांत पाठकों के मनोरंजनार्थ लिखने में समर्थ हुआ। ताकि पाठक गण उसके कहे और सुने से और उसके अनुभव से शिक्षा ग्रहण करें।

*सन ४१४ ईस्वी में, श्रमण फाहियान से ग्रीष्मऋतु में मेरी मुलाकात हुई। वह मेरे साथ मेरे शीतकक्ष में ठहरा रहा। यह **सिन** राज्य के **येही** समय की घटना है। इस अवसर पर वर्ष कन्याराशि पर स्थित था। जब तक वह मेरा अतिथि रहा तब तक मैं बार २ उससे उसकी यात्रा के विषय में वार्तालाप करता रहा। श्रमण नम्र व सौजन्य प्रकृति का मनुष्य था। उसने अपनी यात्रा का सत्यशः वृतांत कह सुनाया। मेरी प्रार्थना पर पहिले तो उसने अपनी यात्रा का विवरण संक्षिप्त में कहा। बाद में आदि से अंत तक अपनी यात्रा की आश्चर्य्य जनक और सविस्तर घटनायें बताईं। उसने कहा कि जब मैं उन कष्टों का स्मरण करता हूं जिनको मैंने सहन किया तब मेरा हृदय सहसा विचलित हो जाता है मेरे शरीर में रोमांच उठ आते हैं। और पसीना आजाता है। मैंने अवर्णनीय कठिनाईयां सहन कीं और दुर्गम मार्गों को तय किया। ऐसे समय में मैंने

---

*यहां से इस अध्याय के अन्ततक का लेख दूसरे के हाथ का लिखा मालूम होता है। शेष यात्रा विवरण स्वयं फाहियान की लेखनी द्वारा लिखा गया है।

स्वतः के सुख एवं लाभ का किंचित मात्र खयाल नहीं किया। इन सब का केवल एकही कारण है। मेरा केवल एकही उद्देश था। उस उद्देश को मैं सरल चित्त और द्रढ़ भावना से पूरा करना चाहता था।

इसी कारण अपने उद्देश के सहस्रांश की पूर्ति के लिये मैंने मृत्यु पर्य्यंत भय की परवाह न की। इन वाक्यों ने मुझपर बड़ा गहरा प्रभाव डाला। मैं सहसा विचार करने लगा कि यह उन थोड़े इने गिने मनुष्यों में से है जो कि पूर्व और वर्तमान काल में क्वचित ही पैदा होते हैं और प्राणीमात्र की भलाई के लिये अपने निस्स्वार्थ जीवन को अर्पण करते हैं। जब से बौद्धधर्म का पूर्व देशों में प्रचार हुआ तब से आज तक श्रमण फाहियान जैसा निस्स्वार्थी धर्म तत्व का अनुसन्धान करने वाला कोई मनुष्य इस देश में उत्पन्न नहीं हुआ। इसके जीवन से हमें जो शिक्षा मिलती है वह यह है कि जिस मनुष्य के हृदय में किसी महत् कार्य के सम्पादन करने का द्रढ़ और निश्चित संकल्प उदय होवे, उस मनुष्य के, उस नररत्न के कार्य को किसी प्रकार की विघ्न बाधायें नहीं रोक सकतीं। शुभ संकल्प की शक्ति अपार है। जिस कार्य को वह पूरा करना चाहती है उसे क्षण भर में वह सम्पादन करलेती है। ऐसे महत् कार्य उसी समय पूर्ण होते हैं जब उन कार्यों को जिन्हें साधारण लोग आवश्यक कहते हैं, मनुष्य विस्मृत कर जावे और जिन्हें लोग भूल बैठे और अनावश्यक अथवा दुर्गम समझते हैं उन्हें सच्चे हृदय से अपने हाथ में लेवे।

प्रथम खंड समाप्त.

इस समय भारतवर्ष और चीनदेश के बीच परस्पर मैत्री भाव वर्तमान था। हुएनसंग यहां से खाली हाथ नहीं गया। वह जिस उद्देश से आया था उसे उसने पूरा किया। दृढ़ निश्चय के कारण कठिनाईयों का उसने कोई खयाल न किया। बड़ी २ आफ़तों के समय उसके सामने केवल दो विचार रहते थे। एक तो जीवन की क्षणभंगुरता और दूसरे आत्मा का अमरत्व अथवा उद्देश की पूर्ति। जब डाकू उसको वध करने के हेतु ले चले तब भी वह हंसता रहा। उसको इतनी दूर आने का और व्यर्थ ही जान खो देने का पश्चाताप नहीं हुआ। उस समय भी जब उसकी आशा लता पर पानी फिर रहा था, जब भारत वर्ष में जाकर धर्म ग्रन्थों का अध्ययन करने और योगाचार्य भूमिशास्त्र को प्राप्त करने का संकल्प लुटेरों के हाथ से मट्टी में मिल रहा था, तब भी वह हंसता रहा। जरा भी उसके चेहरे पर उदासी न आसकी। गोबी के मरुस्थल की गर्म २ हवा, मार्ग में भूत प्रेत की विघ्नबाधायें! बरफ़ानी पहाड़ों की अवर्णनीय दिक्कतें इस श्रेष्ठ यात्रीरत्न को हताश न कर सकीं। ऐसे दुर्गम समय में भी उसे यह आशा थी कि उसका उद्देश निर्विघ्न सफल होगा। वह श्री अवलोकितेश्वर से प्रार्थना करता था कि मरने पर भी उसका दूसरा जन्म भारतवर्ष में हो जहां वह योगशास्त्र को प्राप्त कर सके।

हुएनसंग उन दन्त कथाओं के लिये जिसे उसने अपने पर्य्यटन में लिखा है क्षम्य है। जब हम उसके उद्देश को देखते हैं और उसकी प्रबल इच्छा का खयाल करते हैं तब सहसा उसके प्रति हमारी श्रद्धा उत्पन्न होजाती है। आफत के समय और सत्कार व प्रतिष्ठा के अवसर पर वह एक समान पाया गया। एक विदेशी धार्मिक यात्री को राजा का अतिथि होना कम गौरव की बात न थी और न है। नालिन्द विश्वविद्यालय में, विद्वान शीलभद्र का स्वप्न इस बात को दर्शाता है कि मनुष्य जीवन की तह में कुछ ऐसी घटनायें हैं जिनके कारणों को समझना कठिन है। मनुष्य के कर्म उसका किससे और कहां २ सम्बन्ध पैदा करते हैं यह कोई नहीं कह सक्ता। भारतवर्ष की अधोगति का स्वप्न (पृष्ठ १३१) झूठा नहीं है न वह कल्पित है। यह मानव जीवन की एक सत्य निर्भ्रांत घटना है। नालिन्द विश्वविद्यालय का वर्णन किसी कदर संसार के वर्तमान प्रसिद्ध विश्वविद्यालयों के वर्णन से कम

रुचिकर अथवा शिक्षाप्रद नहीं है। यहां दस हजार साधु सन्सार के अत्याचार से तंग आ अपनी वृत्ति को विषयों से परे रखकर एकान्त सेवन करते थे। संसार से वे निस्सन्देह दूर रहें परन्तु संसार को माधुर्य्य, लालित्य और इज्जत देने वाले साहित्य, कला, विज्ञान वैद्यिक, धर्म, उपनिषद और फिलासफी का इन्ही स्थानों से प्रचार हुआ। संसारी जिसे संसार कहते हैं यदि उससे प्रत्येक काल में कुछ मनुष्य विरक्त न होते तो शायद जिन्हें वह इतना प्रिय है वे भी उससे असन्तुष्ट होकर दूर भाग जाते।

बौद्धसंसार की हुएनसंग ने कितनी सेवा की इसका ब्योरा केवल अन्तिम अध्याय के पढ़ने से लग सक्ता है। वह ६५७ ग्रंथ और १५० स्मारक लेकर अपने देश को वापिस गया। प्रायः ७४ ग्रन्थों का उसने जीवित काल में अनुवाद किया। आजन्म उसने बौद्धधर्म का प्रचार किया।

परन्तु [यद्यपि वह भारत वर्ष में आया, यहां उसका खूब सत्कार किया गया और हमारे पूर्वजों ने उसे विद्यादान दिया, उसकी मनोवांछित इच्छा को पूर्ण किया, और उसके असंख्य संशयों का निवारण किया] परन्तु हुएनसंग के समय भारत वर्ष का भाग्यप्रवाह विपरीत वह रहा था। समय हमसे प्रतिकूल हो रहा था। धर्म्मों का केवल आडम्बर शेष रह गया था। धार्मिक राष्ट्र की अधोगति के साथ उसके सामाजिक बन्धन भी ढीले हो रहे थे। धर्म के नाम पर शीघ्र ही मृतवत् व्यवहारिक धर्म की नींव पड़ने वाली थी। लोग खुश थे कि हम जाग रहे हैं। हमारे देश और धर्म का भाग्य पुनः उदय हो रहा है परन्तु यथार्थ में सब कुछ इसके विपरीत हुआ !!!

व्रजमोहनलाल वर्मा

अध्याय एकतालीसवां

हुएनसंग.

हुएनसंग का वंशनाम चिन था। परन्तु बौद्धजगत में यह हुएनसंग के नाम से प्रसिद्ध है। यह चिनलियू का निवासी था। हान वंश के राज्य काल के समय का तैकयू का सब से बड़ा हाकिम **चांगकांग** इस के पूर्वजों में से था। इसका परदादा **किन** प्रसिद्ध विद्वान और शंगतांग का राज्याधिकारी था। इसका दादा कांग अपनी विद्वता के कारण एक अच्छे सरकारी पद पर नियुक्त रहा। वह तसाईवंश के राज्यवैभव काल में राजधानी के विश्वविद्यालय अर्थात पेकिन की प्राचीन यूनीवर्सिटी का सभापति नियुक्त किया गया था। और सरकार की ओर से चौनान नगर की आमदनी उसको दी जाती थी।

हुएनसंग का पिता होवाई बड़ा विद्वान सुशील सभ्य और बड़े सरल स्वभाव का मनुष्य था। केवल नामवरी और इज्जत की प्राप्ति के लिये ही उसने कोई काम नहीं किया। जब उसे मालूम हुआ कि सुईवंश के शासन का अंत हो रहा है तब वह संसारी कारबार से मुंह मोड़ कर धर्मध्यान और शास्त्रों के अध्ययन में अपना समय बिताने लगा। उसे बहुत जिलों और सूबों की अफसरी मिलती रही परन्तु उसने किसी को स्वीकार नहीं किया। वह सदा यह कहकर टाल दिया करता कि मेरा स्वास्थ्य अच्छा नहीं है। इसलिये मैं किसी अफसरी के पद का कार्य अच्छी तरह पूरा न कर सकूंगा। होवाई के चार बेटे थे। हुएनसंग सब से छोटा था। वह लड़कपन से ही बड़ा गम्भीर और चिंताशील मनुष्य था। एक दिन होवाई उसको मेज के पास बिठलाकर दया विषयक एक धर्म पुस्तक पढ़ रहा था जिस में पैत्रिक प्रेम का वर्णन था। जब पढ़ते २ होवाई उस स्थान पर आया जहां तसंग तसेयू अपने गुरू के सामने उठ खड़ा हुआ था, तब हुएनसंग ने भी अपने कपड़े संभाले और अपने पिता के सन्मुख वह सादर खड़ा होगया। जब उसके पिता ने इस का कारण पूछा तब वह बोला

कि जब तसंगतसेयू अपने गुरू के सन्मुख पैत्रिक प्रेम का पाठ सुनकर खड़ा होगया तब हुएनसंग अपने पिता के प्रेममय उपदेश को सुनकर क्यों न खड़ा हो। इस उत्तर को सुनकर पिता को बहुत खुशी हुई। उसको विश्वास होगया कि उसका पुत्र बड़ा प्रसिद्ध और नामी पुरुष होगा। बचपन में ही हुएनसंग में भक्ति थी।

लड़कपन से ही वह विद्वान पुरुषों द्वारा लिखे धर्म ग्रन्थों को पढ़ने लगा। श्रद्धाहीन और साधारण संसारी मनुष्यों के साथ वह बहुधा नहीं मिलता था। न वह खेल तमाशों में अधिक शामिल रहता था। विद्याध्ययन ही उसके मन बहलाव का बहुत बड़ा जरिया था। उसका भाई चांगसी तसंग के मठ का पुजारी था। भाई की साधुवृत्ति का वृतांत सुनकर उसे प्रसन्नता हुई और वह शीघ्रही उसे अपने आश्रम में ले आया और धार्मिक शिक्षा देने लगा।

हुएनसंग अपनी विद्या के बल से इतना प्रसिद्ध हो गया कि नवयुवक होने पर भी, हाई कमिश्नर **चंग सेनकू** ने उसे अपने राज्य के प्रधान चौदह पुजारियों में शामिल कर लिया। उसके भाई के मठ में किंग नामक एक पुजारी निर्वाणसूत्र की शिक्षा दिया करता था। हुएनसंग ने बड़े प्रेम के साथ उसे याद कर लिया। इसी प्रकार महायान शास्त्र को उसने विद्वान **येन** के पास पढ़ा। वह प्रचुर बुद्धि का मनुष्य था। एकबार सुनने से उसे याद होजाया करता था। इस प्रकार थोड़े काल में बहुत से ग्रन्थ उसने पाठ कर डाले। १३ वर्ष की अवस्था में ही वह धर्म के सिद्धान्तों का इतनी अच्छी तरह से निरुपण करता था कि सब पुजारी चाकित रह जाते थे।

थोड़ें दिनों के बाद सुईवंश का अधःपतन होगया। देश भर में मारकाट, खून खराबी और लूटमार का दौरा शुरू हुआ। चारों ओर राज्य क्रांति के परिणाम दृष्टि गोचर होनें लगे। माजिस्ट्रेट मार डाले गये। पुजारियों का भी खून किया गया। बहुत से पुजारी भाग गये। सड़कों पर मुर्दों की रास दिखाई देने लगी। **वांग तोंग** और **ल्यूिशिह** के उपद्रव के बाद देश में ऐसा उपद्रव कभी देखने में नहीं आया था। हुएनसंग ने अपने भाई

से कहा कि ऐसे कुअवसर में हम मृत्यु से नहीं बच सके। तांग के राजकुमार ने तसनयांग के बागियों को परास्त करके चांग गान में शांति और शासन स्थापित किया है। प्रजा भी उस पर विश्वास करती है। इस लिये चलो हम भी वहीं चलें। भाई राजी हो गया और दोनों वहां चले गये।

यह यूतेह का प्रथम वर्ष था। इस समय देश में कोई नियमित राजसत्ता नहीं थी। राज्य शासन का कोई प्रबन्ध नहीं था। सब प्रजा अस्त्र धारण करने और युद्ध कला सीखने में लगी हुई थीं। श्री बुद्धदेव और महात्मा कनूफ्यूशियस की शिक्षा को सर्व साधारण सर्वथा भूलगये थे। इस लिये धर्म परिषदों का होना भी बंद होगया था। चीन में इस समय सिपहगिरी का युग था। हुएनसगं ने कहा कि चलो, उत्तर पश्चिम और दक्षिण पश्चिम चीन को चलें। जहां सवाई वंश के दूसरे राजा यांगटी ने चार विशाल धार्मिक विश्वविद्यालय स्थापित किये हैं और जहां कंगटो और सायेतिसन जैसे प्रसिद्ध पुजारी चले गये हैं। उसका भाई राजी होगया। और दोनों उस तरफ रवाना हो गये। मार्ग में उन्हें बौद्धधर्म के प्रसिद्ध विद्वान कोंग और कंग मिले। उनके पास दोनों भाई एक मास से अधिक ठहरे रहे। और उनसे शिक्षा पाते रहे। वहां से बिदा होकर वे शंगटू पहुंचे। यहां उनको पुनः साये तिसन, पिसन, और चिंनसे शास्त्रों के अध्ययन करने का अवसर मिला। इनके पास इन्होंने महायान सम्परिग्रह शास्त्र, अभिधर्म शास्त्र और कात्यायण शास्त्र को पढ़ा। यहां वे तीन वर्ष तक ठहरे रहे और भिन्न २ धर्मों के, सम्प्रदायों के धर्म शास्त्रों का इन्होंने अध्ययन किया।

इस समय देश में अकाल था। हर जगह उपद्रव होते थे। परन्तु शूह नामक प्रांत में शांति थी। इसलिये चारों दिशा के पुजारी वहां एकत्र हो गये। सब पुजारी हुएनसंग की प्रतिष्ठा करते थे। हुएनसंग का भाई भी विद्वान पुरुष था। धर्म शास्त्र की अपेक्षा उसे चीन के साहित्य ग्रन्थों का भी अच्छा ज्ञान था। वह इतिहासज्ञ भी था। वह शरीर का सुन्दर और गंभीर प्रकृति का मनुष्य था। आचरण भी उसके पवित्र थे। राजा और प्रजा दोनों उसे खूब चाहते थे। वह सुवक्ता था। परन्तु हुएनसंग में कुछ और अधिक गुण थे। उसकी विद्वत्ता का प्रभाव एकाएकी सब पर पड़ता

था। वह जीवन मुक्त और विरक्त मनुष्य था। एकांत सेवन करते हुये वह प्रकृति के गहन भेदों को और मनुष्य चरित्र के अथवा बौद्धधर्म के गूढ़ प्रश्नों के कारणों को भली भांति समझ गया था। राजा के सन्मुख भी वह स्वतन्त्रता के साथ उपदेश देता था। बीस वर्ष की अवस्था में वह शिंगटो का बड़ा पुजारी बना दिया गया। यहां उसने विनय पितक और धर्म सूत्रों का अध्यन किया। वह अपने सन्देह दूर करने के लिये और शंकाओं के समाधान के लिये राजधानी में जाना चाहता था। परन्तु उसे शक हुआ कि उसका भाई कहीं विघ्न न डाले। इस लिये वह छिपकर वहां से चला गया। जब वह हांगचू पहुंचा तब वहां के पुजारियों ने और शासनकर्ता ने उसका यथोचित सत्कार किया। वे इसके नाम को पहिले से जानते थे। यहां तिनहवांग नामक मठ में उसने शिवलून और अभिधर्म शास्त्र पर कुछ प्रभावशाली व्याख्यान दिये। राजा ने प्रसन्न होकर उसकी खूब प्रतिष्ठा की। मान्य दिया। बहुमूल्य वस्तुयें उसे भेट करना चाहा। परन्तु हुएनसंग ने उन्हें स्वीकार नहीं किया।

यहां से विदा होकर वह सियांग चाऊ पहुंचा। वहां से चांगगान पहुंच कर उसने **सत्य सिद्ध व्याकरण शास्त्र** को पढ़ा। इस समय चांगगान में दो प्रसिद्ध पुजारी शांग और पिंन नामक रहते थे। उन्होंने हुएनसंग की बड़ी प्रतिष्ठा की और आशीर्वाद दिया कि तू संसार के प्रसिद्ध विद्वानों में से एक होगा परन्तु हमको वह दिन देखने को नसीब न होगा।

[जब वह भिन्न २ सम्प्रदायों के विद्वानों के पास से धार्मिक शिक्षा पूरी कर चुका तब उसे यह सन्देह उत्पन्न हुआ कि वह इन पंथों में से किस पंथ का अनुयायी बने। उसे विश्वास हो गया कि **योगाचार्य भूमि शास्त्र** के द्वारा उसके सब संशय निवृत हो सकेंगे। उसकी प्राप्ति के हेतु उसने भारतवर्ष की ओर जाना निश्चय किया। उसके पूर्व भी फाहियान और चीयान भारतवर्ष में धर्म तत्व की खोज के लिये आये थे। इसने भी वहां जाने का दृढ़ निश्चय किया।]

अपने मन में उसने निश्चय कर लिया कि वह फाहियान और चीयान का अनुकरण करेगा। उन्होंने सत्य की खोज की बाग को कभी

ढ़ीला नहीं छोड़ा। क्या मैं उनके जीवन की घटनाओं से उत्साहित नहीं हो सक्ता? क्या मैं उनकी पवित्र स्मृति और निष्कलंक आचरण को जीवित नहीं रख सक्ता?

वह राजा के सन्मुख कुछ लोगों को साथ ले उपस्थित हुआ। और पश्चिम देश को जाने की आज्ञा मांगी। परन्तु उस समय इस प्रकार की आज्ञा का मिलना बिलकुल वन्द हो चुका था। इस लिये उसके साथी तो निराश हो गये। उन्होंने यात्रा करने का संकल्प छोड़ दिया। परन्तु हुऐनसंग ने बिना आज्ञा प्राप्त किये ही आगे जाने का निश्चय कर लिया। यद्यपि उसे मालूम था कि पश्चिम देश [भारतवर्ष] की यात्रा में उसे नाना प्रकार की कठिनाईयां उठाना पड़ेंगी, परन्तु वह अपने निश्चय से नहीं डिगा। वह एक मन्दिर में गया। वहां उसने पुजारियों पर अपनी इच्छा प्रकट की और कहा कि वे प्रार्थना करें और आशीर्वाद दें कि मैं इस यात्रा में सफल होऊं।

जब हुएनसंग पैदा हुआ था तब उस की माता ने यह स्वप्न देखा था कि वह श्वेत वस्त्र धारण किये पश्चिमी देश की ओर जा रहा है। इस पर माता ने पूछा कि क्या तू मेरा पुत्र है और कहां जा रहा है? उस पर हुएनसंग ने उत्तर दिया कि मैं सत्य की खोज में जा रहा हूं। यह पहिला इशारा था जो प्रेम वत्सला माता को अपने पुत्र के भावी जविन के विषय में मिला था। वह महाराज चाँगकान के राज्य काल के तीसरे वर्ष आठवें महीने में, अर्थात सन ६३० ई० में पश्चिम देश की यात्रा के हेतु रवाना हुआ। पूर्व रात्रि को उसने स्वप्न देखा कि वह सुमेरूपर्वत को पार कर रहा है। उसके लिये यह स्वप्न बहुत उत्तेजक और उत्साहवर्धक अर्थों से पूर्ण था।

हुएनसंग २६ वर्ष की अवस्था में यात्रा के लिये रवाना हुआ। एक हियायूता नामक पुजारी जो निर्वाण सूत्र को समाप्त करके अपने देश को जा रहा था उसके साथ हो गया। वह उसके साथ तसनचाऊ तक गया। वहां से हुएनसंग लानचाऊ हो कर लियांगचाऊ नगर में पहुंचा वहां की एक नदी को पार करके वह सीफान [तिब्बत] की सरहद

पर पहुंचा।

लियांगचाऊ में हुईवी नामक एक विद्वान पुरुष रहता था। जब उस को हुंएनसंग की यात्रा का पवित्र उद्देश मालूम हुआ तब उसे बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने अपने दो शिष्यों को आज्ञा दी कि तुम हुएनसंग के साथ जावो। और उसे पश्चिम देश के जाने के गुप्त मार्गों का पता बतलावो। ऐसाही किया गया। दिन को तो वे छुप रहते और रात्रि भर चला करते थे। जब वह क़ावचाऊ पहुंचा तब वहां के शासनकर्ता टोकियो ने उसे बहुत सा सामान दिया। और बड़ी सहायता की।

यहां उसे मालूम हुआ कि पश्चिम देश को जाने के लिये हूलू नदी को उत्तरीय किनारे से पार करना चाहिये। वही पश्चिम देश में जाने का द्वार है। आगे उत्तर पश्चिम दिशा में पांच मीनारें हैं। इनमें सरहद की निगरानी के लिये अफसर रहते हैं। यहां पर कड़ी चौकी और पहरा है। इन मनिारों को तय करने के बाद मोकियायन का मैदान, है। इसके बाद **आईगू** देश आता है।

अध्याय बेयालीसवां

सीमांत भारत.

हुएनसंग को यात्रा की कठिनाइयों का हाल सुन कर दुःख हुआ। उसका घोड़ा मरचुका था। उसकी समझ में नहीं आता था कि अब यात्रा कैसे करें। इस लिये उसे **केन्यू** में एक मास ठहरना पड़ा। वहां से आगे बढ़ने के पहिले ही **लियांगचाऊ** से कुछ जासूसों ने आकर समाचार दिया कि एक पुजारी हुएनसंग नामक सीफान देश में जाना चाहता है। सूबेदारों को चाहिये कि उसे रोकें। उस प्रान्त का गवर्नर लीचांग धार्मिक मनुष्य था। हुएनसंग इसी के पास ठहरा हुआ था। गवर्नर को संदेह

हुआ कि शायद मेरा अतिथि ही हुएनसंग न हो। उसने उससे पूछा कि यदि तुम ही हुएनसंग हो तो मुझसे कह दो। मैं यहां से निकल भागने में तुम्हारी सहायता करूंगा। हुएनसंग ने तब सत्य २ कह दिया और अपना उद्देश उस पर प्रकट किया। गवर्नर ने उस जासूसी परवाने को फाड़डाला। और कहा कि तुम यहां से शीघ्र ही भाग जावो। इसी समय से हुएनसंग को चिंताओं ने आघेरा। दो शिष्यों में से एक जिसका कि नाम ताऊचंग था उससे विदा होकर **तुन-ह-वांग** वापिस चला गया। दूसरा जिसका नाम हुई-लिन था बहुतही निर्बल —कमजोर—था। वह इतनी बड़ी यात्रा नहीं कर सक्ता था। इस लिये हुएनसंग ने उसे भी वापिस कर दिया।

फिर उसने एक घोड़ा खरीदा। और यात्रा में आगे बढ़ा। अचानक उसकी एक पुजारी पाम्टू से भेंट हुई। यह शी वंश का था। उसने साथ देने का वचन दिया। उसने एक अनुभवी बुड्ढे को साथ लिया जो कि भारत वर्ष में ३० बार आया गया था। बुड्ढे ने अपना घोड़ा हुएनसंग को दे दिया। वह घोड़ा भी खूब सफर किया हुआ और रास्ता देखा हुआ था। जब हुएनसंग **चांगगान** पहुंचा तो उसने एक ज्योतिषी **होवांगता** से अपनी यात्रा के विषय में कुछ प्रश्न किये। उस ज्योतिषी ने कहा कि तुम्हारी यात्रा सुलभ और फलदायक होगी। तुम्हारी इच्छा पूर्ण होगी। हुएनसंग आगे बढ़ा और एक नदी पर पहुंचा। उसके साथी-मार्ग-दर्शक ने कुछ लकड़ियां काटीं और उनका पुल बांधकर उस पर मिट्टी डाली। घोड़े के साथ उन्होंने इस विधि से इस नदी को पार किया। आगे चल कर आराम किया। रात को सोते समय उसे यह मालूम हुआ कि मार्ग दर्शक उसकी ओर एक कटार लेकर बढ़ा। उसका अभिप्राय नहीं मालूम हुआ। थोड़ी दूर आकर वह फिर वापिस चला गया। हुएनसंग धर्म सूत्रों को पढ़ने लगा। प्रातःकाल हुआ। मार्ग दर्शक ने कहा कि तुम्हारा शिष्य तुम्हें भयानक मार्ग से ले जा रहा है जहां अन्न जल नहीं मिलता। अच्छा हो यदि तुम वापिस लौट चलो। परन्तु हुएनसंग ने न माना। थोड़ी दूर और जाकर मार्गदर्शक ने कहा कि अब तो मैं आगे नहीं जा सक्ता। इसलिये उसे भी हुएनसंग ने वापिस

कर दिया। और अपने शिष्य को भी वापिस जाने की आज्ञा देदी। वह फिर स्वयं बड़ी मुस्तैदी के साथ खबरदार होकर आगे बढ़ा। मार्ग में हड्डियां और गोबर के सिवाय कुछ भी दिखाई न दिया। थोड़ी दूर जाकर उसे बहुत सी, सूरतें जो ऊटों और घोड़ों पर फौजी सिपाहियों के समान सशस्त्र सवार थीं दिखाई दीं। उनकी संख्या भी धीरे २ बढ़ती गई। परन्तु थोड़ी देर में वे सब लोप होगईं। हुएनसंग समझ गया कि वे सिपाहियों के रूप में यथार्थ में प्रेत भूत थे। उनके लोप होजाने पर यह आवाज आई कि डरो मत भय न करो आगे चले जावो। इसके बाद वह आगे बढ़ कर पहली मीनार पर पहुंचा और एक खाई में छिपा रहा। रात को वहां से निकल कर वह नदी पर पहुंचा। हाथ, मुह, धोकर पानी पिया। और एक बर्तन में पानी भरा। उसी समय उसके पैर में एक तीर आकर लगा। एक २ कर के दो तीर फिर आये। हुएनसंग ने चिल्लाकर कहा कि मैं पुजारी हूं और राजधानी से आया हूं। मुझे क्यों मारते हो? सिपाही आकर उसे अफसर के पास लेगये। अफसर ने कहा तुम हमारे देश के पुजारी नहीं हो मैं तुम को आगे न जाने दूंगा।

हुएनसंग वापिस चला गया। तुम वह तो नहीं हो इस पर हुएनसंग ने उसे अपना घोड़ा दिखाया, जिसके शरीर पर कई जगह उसका नाम लिखा हुआ था। अफसर ने कहा चांग कियाऊ में एक बड़ा विद्वान पुजारी है। तुम वहां जाओ, मैं तुम को अपने साथ ले चलूंगा। वहां रहो। हुएनसंग ने उत्तर दिया कि मैं वहां नहीं जाता। शोक कि आप मुझे मेरी यात्रा से रोकते हैं। मैं अवश्य जाऊंगा यदि तुम नहीं जाने देते तो मुझे मार डालो, परन्तु मैं पीछे पैर न रखूंगा। अफसर पर उसकी बातों का बड़ा असर पड़ा। वह कहने लगा कि अब तुम आराम करो। मैं स्वयं तुम को थोड़ी दूर तक पहुंचा आऊंगा। मैं तुम को रोकना नहीं चाहता। सबेरा होतेही वह थोड़ी दूर तक हुएनसंग के साथ गया और वहां एक रास्ता दिखाकर कहने लगा यह मार्ग सीधा चौथी मीनार तक जाता है। वहां का अफसर मेरा संबन्धी और सज्जन पुरुष है। उसका वंश नाम वांग है। और प्रचलित नाम पेलिंग है। तुम

उससे कहना कि मैंने तुम को भेजा है। यह कह कर अफसर हुएनसंग से बिदा हुआ। एक दिन और रात चल कर के वह मीनार के निकट पहुंचा। उसने सोचा कि चुप के से पानी लेकर आगे बढ़जावें। कहीं ऐसा न हो कि मैं रोक लिया जाऊं। पानी भरते समय एक तीर आया। हुएनसंग ने फिर कर वही बात कहा जो पहली मीनार पर कहा था और मीनार की ओर चला गया। जाकर अफसर से अपना संकल्प और यात्रा का उद्देश बतलाया। उसके पास रात भर रहा और सबेरे उठकर उससे बिदा हो आगे बढ़ा। यहां से ८०० ली चल कर वह उस मरुस्थल में पहुंचा जिसका प्राचीन नाम **शाहू** और नवीन नाम **मो-कि-या-यन** था। वहां उसे न घास ही दिखी न पशु न पक्षी। मार्ग भर में उसे भूत प्रेत सताते रहे जिनको वह मंत्रों और श्लोकों के द्वारा भी न भगा सका। परन्तु हुएनसंग लिखता है कि जब उसने पानजोसिनसूत्र (प्रज्ञापारमिताहृदयसूत्र) पढ़ कर फूंका तो सब लोप हो गये। हुएनसंग रास्ता भूल गया। और दुष्ट प्रेत आत्माओं ने उसे बहुत सताना आरंभ किया। उसका पानी का बरतन गिर गया। पानी सब नष्ट हो गया। मार्ग में पानी का चिन्ह भी न था। पांच दिन वह प्यासा रहा। प्यास के कारण शिथिल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। रात को ठंडी हवा चली और उसे नींद आ गई। उस ने एक स्वप्न देखा कि एक श्वेतवस्त्र धारी बड़ा लम्बा मनुष्य उसके पास आया है। उस ने उसको उत्साहित किया और कहा उठ आगे बढ़। आंख खुली और वह आगे बढ़ा। उसे एक रमणीक हरियाली नजर पड़ी जहां उसने घोड़े को छोड़ दिया और एक सोते पर जाकर अपनी प्यास बुझाई। यथार्थ में हुएनसंग लिखता है कि यह रमणीक हरियाली और पानी का सोता असली नहीं था। किन्तु यह महात्मा बुद्ध का एक चमत्कार था। इस स्थान में हुएनसंग एक दिन और एक रात ठहरा रहा। साथ में पानी लेकर आगे चला। मार्ग की कठिनाइयां सहन करते हुए वह आगे को बढ़ता गया। वह आइगु पहुंचा और वहां एक मठ में जहां तीन पुजारी रहते थे जा ठहरा। उसके आने का समाचार सुन कर उस देश के सब पुजारी और वहां का राजा उसके दर्शन को आये। उसकी बातें सुन कर वे बड़े प्रसन्न हुये। उसकी सेवा सुश्रुषा की।

उसके उद्देश और संकल्प को सुन कर वे वाह वाह करने लगे। इसी समय **कोचिंग** के राजा ने आइगु नरेश के पास दूत भेजे थे। जिस दिन वे वापिस जाने वाले थे उसी दिन हुएनसंग वहां पहुंचा। उन्होंने उसके आने का समाचार अपने राजा को दिया। उसने आइगु नरेश के पास समाचार भेजा कि हुएनसंग उसके पास भेज दिया जावे। वह उन दूतों के साथ दरवार में आया। रात को राजधानी के नगर परकोटे के पास पहुंचा। राजा स्वयं उसको लेने के लिये आया। हुएनसंग दरवार में पहुंचा और एक चित्र की छाया में जो सिंहासन के नीचे लगाया गया था जाकर बैठ गया। राजा ने कहा कि जब से आप के आने का समाचार मुझे मिला तब से मैं बहुत अधैर्य्य होरहा था। आज आप के आने की आशा थी इस लिये मैं और मेरे बच्चे अब तक नहीं सोये। इसके थोड़ी देर वाद राजरानी भी हुएनसंग के दर्शन को आई। प्रातःकाल राजा और रानी अपने मुसाहिबों और अमीरों के साथ दरवार में आये। राजा ने हुएनसंग के साहस को सराहा। उसका खूब सत्कार किया। दस दिन के वाद जब हुएनसंग ने जाने के लिये आज्ञा मांगी तब राजा ने कहा कि अब तुम यहीं रहो। मेरी प्रजा तुम्हारी शिक्षा को ग्रहण करेगी और इस देश में जो कई हजार पुजारी हैं वे सब तुम्हारे शिष्य हो जावेंगे। तुम उन्हें शिक्षा दो। मैंने चीन की यात्रा में कई अच्छे पुजारी देखे। परन्तु मैंने किसी को भी इस पद के ग्रहण करने को नहीं कहा। परन्तु मेरा मन यह नहीं चाहता कि तुम्हें यहां से जाने दूं। तुम इस सफर के खयाल को छोड़ दो।

हुएनसंग ने उत्तर दिया कि मैं यद्यपि आप की कृपा और अनुग्रह का आभारी हूं। परन्तु मैंने इस यात्रा को सेवा सुश्रुषा या आतिथिसत्कार या अनुग्रह की प्राप्ति के लिये नहीं किया है। इस यात्रा का उद्देश सत्य की खोज करना है। पूर्व देश में जो धार्म्मिक ग्रंथ पाये जाते हैं उनमें वहुत कुछ दोष है। वे अपूर्ण भी हैं। मेरी कुछ शंकायें हैं। इन सब को हल करने के लिये मैंने पश्चिम की यात्रा का बीड़ा उठाया है। अब तक किसी भी सूवेदार और राजा ने मुझे नहीं रोका। आप क्यों रोकते हैं। राजा ने कहा मै तुम्हें जाने न दूंगा। अब तुम यहीं रह जावो। हुएनसंग ने

फिर उत्तर दिया, कि अभी तक मेरी यात्रा का उद्देश पूरा नहीं हुआ है, इस लिये मैं यहां नहीं ठहर सक्ता। आप धर्म प्रेमी हैं, मुझे क्षमा करें और आगे जाने दें। राजा ने कहा कि मै तुम को केवल इस लिये रोकता हूं कि मेरे राज्य में कोई ऐसा योग्य पुजारी नहीं है जो प्रजा को धर्म ज्ञान और उपदेश दे सके। परन्तु जब इस पर भी हुएनसंग ने यही कहा कि मैं अवश्य जाऊंगा तो राजा ने क्रुद्ध हो कर अपनी आस्तीन चढ़ायी और कहा कि मै तुमको कदापि न जाने दूंगा। मेरे में तुम को रोकने की शक्ति है। तुम हठ न करो किन्तु इस मामले में खूब सोचो। मैं तुमको न जाने दूंगा। हुएनसंग ने हंसकर कहा कि तुम जबर्दस्ती से मेरे शरीर को यहां रोक सक्ते हो, मेरी आत्मा को नहीं। इसके बाद उसने खाना पीना भी छोड़ दिया। जब राजा ने देखा कि हुएनसंग ने तीन दिन कुछ नहीं खाया और वह निर्बल होता जाता है तब उसने उसे यात्रा करने की आज्ञा दी और कहा कि भोजन करो और चले जाओ।

हुएनसंग को राजा की बात पर भरोसा नहीं आया। वह राजा को एक मंदिर में लेगया। और वहां उससे कसम ली। राजा ने शपथ ली और कहा कि जब तुम अपनी यात्रा समाप्त करके वापिस आओ तो मेरे राज्य में अवश्य ठहरना। परन्तु यदि भविष्य में तुम पूर्ण ज्ञान प्राप्त करके बुद्ध होवो तो प्रसन्नजित्त और बिम्बसार के समान मुझे अपनी सेवा करने का अवसर देना। हुएनसंग इस देश में एक मास तक ठहरा रहा। राजा से शपथ लेने के बाद उसने भोजन किया। राजा और रानी धर्मोपदेश के समय नित्य उपस्थित रहते थे। राजा ने हुएनसंग की यात्रा का सब प्रबन्ध कर दिया और खान यहहूं के नाम एक पत्र भी लिख दिया। इधर हुएनसंग वूपवान और तातसिन देशों से होता हुआ ओकीनी (हिसार) देश में आया।

अध्याय त्रैतालीसवां

ओकीनी

ओकीनी में एक सोता अफ़्स्वामी के नाम से प्रसिद्ध है। यह सड़क के दक्षिण में एक रेतीली पहाड़ी पर स्थित है। प्राचीन काल में व्यापारियों का एक काफला इस स्थान पर आया। इसमें कई सौ मनुष्य थे। पानी न मिलने के कारण सब लोग प्यासे थे। वे पानी की खोज में इधर उधर मारे फिर रहे थे। प्यास के मारे उनका हृदय सूख रहा था। इस काफले के साथ एक सन्यासी भी था। उसके पास खाने पीने का कोई सामान नहीं था। उसकी गुजर काफले के यात्रियों से होती थी। उसे न किसी प्रकार की घबराहट थी न प्यास। वह बहुत शांत चित्त था। यात्रियों को इस बात पर बड़ा आश्चर्य्य हुआ। उन्होंने इसका कारण पूछना चाहा। उसने कहा कि हे लोगो तुममें से जो पानी के लिये बेचैन है उसे बुद्धदेव का पूजन करना चाहिये। यदि ऐसा करो तो मैं एक रेतीली पहाड़ी पर जाकर एक सोता ले आंऊ। वे सब राजी होगये। तब उन पुजारियों ने कहा कि सब को बुद्धदेव के पांचो नियमों के पालन करने का इकरार करना चाहिये। इस पर भी वे राजी होगये। उसने कहा, 'अच्छा मैं जाता हूं' परन्तु जब मैं पहाडी पर पहुंच जाऊं तब तुम लोग जोर से चिल्लाकर कहना कि अफ़्स्वामी हम्हारे लिये पानी का सोता भेज दे। वह पहाडी पर चढ़ गया और लोगों ने चिल्ला कर कहा अफ़्स्वामी हमारे लिये पानी का सोता भेज दे। कुछ ही देर में ऊपर से पानी नीचे को बहता हुआ काफेल के पास पहुंच गया। यात्रियों ने खूब प्यास बुझाई और अपनी २ छागलों में पानी भर लिया। परन्तु पुजारी वापिस न आया। वे बड़े सन्देह में पड़े और सब के सब पहाडी पर उसे देखने को गये वहां जाकर देखा कि पुजारी मुरदा पड़ा है उसने सब की रक्षा के लिये अपने प्राण त्याग दिये हैं। उन सब को उस पुजारी के लिये बड़ा शोक हुआ। उन्होंने पश्चिम देश (भारत वर्ष) की विधि के अनुसार उसके शरीर को फूंक दिया और

कंकर पत्थर जमा करके उसकी राख पर एक मीनार बनाई। वह पानी का सोता अब तक वर्तमान है। जितने यात्री उस पहाड़ी के पास से जाते हैं उन सब को वह पानी देता है। जिस दिन कोई न जावे उस दिन वह भी सूखा रहता है।

हुएनसंग ने इसी पहाड़ी पर रात बिताई। सवेरे वहां से चल कर उसने चांदी के पहाड़ को तय किया। इस पहाड़ में से चांदी खोद कर निकाली जाती है। और वह पश्चिम देश की आवश्यक्ताओं को पूरा करती है। पहाड़ की पश्चिमी दिशा में उसे डाकुओं का एक झुंड मिला जो अपने नियम के अनुसार कुछ ले देकर चलता बना। यहां से चल कर हुएनसंग, ओ-की नी नगर में पहुंचा। राजा अपने मुसाहिबों व मंत्री के साथ उसको लेने के लिये आया और बड़े जोरों से उसका स्वागत करके उसे अपने महल में ले गया। हुएनसंग एक रात राजा के साथ ठहरकर आगे बढ़ा। उसने एक नदी को पार किया और चलते २ वह क्यूची देश की सरहद पर आ पहुंचा।

यहां से वह दीपन्कर नगर में आया। यहां दीपन्कर बुद्ध के स्मारक एक विहार में रखे हुये हैं। यहां से वह उस गुफा में जाना चाहता था जहां कि नाग राज गोपाल रहता था। परन्तु उसे मालूम हुआ कि मार्ग भयानक है और डाकुओं का भी बहुत डर है इसलिये लोगों ने उसे वहां जाने से रोका। उनको हुएनसंग ने उत्तर दिया कि जब मैं इतनी दूर से आया तो वहां क्यों न जाऊं। तुम लोग आगे चलो मैं तुम से आन मिलूंगा। हुएनसंग ने लोगों से कहा कि यदि तुममें से कोई मेरे साथ चले तो बड़ी कृपा होगी। परन्तु एक छोटे लड़के के सिवाय कोई चलने को तय्यार न हुआ। रात को हुएनसंग एक किसान के मकान पर ठहरा। वहां से एक बूढ़े आदमी को साथ लेकर जो उस स्थान से परिचित था वह आगे बढ़ा।

मार्ग में पांच डाकू मिले। जो नंगी तलवारें लेकर उन पर दौड़े। उनको देखते ही हुएनसंग ने ऊपर का पहिना हुआ कपड़ा उतार दिया। अब डाकूओं को मालूम हुआ कि यह तो कोई सन्यासी है। डाकुओं ने

उसे प्रणाम किया और पूछा कि आप किधर जाते हैं। उसने उत्तर दिया कि मैं बुद्धदेव की छाया के दर्शन करने जाता हूं। डाकुओं ने पूछा कि क्या आप को मालूम नहीं हुआ कि मार्ग में भय है डाकू भी मिलते हैं। हुएनसंग ने उत्तर दिया कि वे भी मेरे ही समान मनुष्य हैं। मार्ग में कितने ही भय हों मैं नहीं डरता। भला मनुष्यों से भी कोई डरता है। तुम जैसे कृपालुओं से कौन डरेगा ?

हुएनसंग की वातों का डाकुओं पर वड़ा असर पड़ा। यहां तक कि उन्होंने उसे उस गुफ़ा तक जाने की आज्ञा दी जहां वुद्धदेव की छाया लोगों को दिखाई देती थी। हुएनसंग उस स्थान पर पहुंचा। और गुफ़ा में जाकर वुद्धदेव की प्रार्थना की। एक वार उनकी छाया दिखाई दी परन्तु एक मिनिट के वाद वह लोप होगई। एक वार फिर छाया दिखी। पहले से भी जल्दी वह लोप होगई। इस खाई से निकलने के वाद उसे वही पांच डाकू मिले। उनको हुएनसंग ने उपदेश दिया। वहां से चलकर वह गान्धार देश में पहुंचा जिसकी राजधानी पुरुषपुर अर्थात पेशावर थी। इस देश में प्राचीन काल में वहुत से ऋषी मुनि हो चुके हैं जैसे नारायण देव, असन्व वोद्धिसत्व, वसुवंधु वौद्धिसत्व, धर्मत्रात मनोरहित पूर्वपूज्यपाद इत्यादि। इस देश के उत्तर में वुद्धदेव के पात्र पर एक विशाल मीनार वनी है। यह पात्र वाद में वनारस भेज दिया गया। पुरुषपुर से आगे पीपल का सौ हाथ ऊंचा एक वृक्ष है जिसे महापवित्र मानते हैं। इसके नीचे पूर्व काल के चारों वुद्धावतारों ने वहुत काल तक साधन और ध्यान किया था। यहां अव उन तथागतों की मूर्तियां रखी हैं। इसी वृक्ष के पास एक स्तूप है जिसे महाराज कानिष्क ने वनवाया था। यह ४०० फीट ऊंचा है। इसका दासाही केवल १५० फीट ऊंचा है। इस स्थान से आगे वढ़ कर और पुशकलावती और उत्तर खंड से होता देखता हुआ हुएनसंग उद्यान में आया। शुवस्तु नदी के दोनों ओर १४०० संघाराम थे जिनमें १८ हजार पुजारी रहते थे। यहां वौद्धधर्म के पांच पंथों* के साधु रहते थे परन्तु ये सव संघाराम उजाड़ हैं।

---

*वौद्धधर्म के पांच संम्प्रदायों के नाम धर्म गुप्त, आहिंशासक, काश्यप, सखस्तवादिन और महासंधिका।

जब हुएनसंग क्यूची देश की राजधानी में पहुंचा तब वहां के राजा और प्रसिद्ध पुजारी मोक्षगुप्त ने नगर के बाहर आकर इसका स्वागत किया। नगर के सब पुजारी एक मंडप में, जो खास तरह से इसी अवसर के लिये बनाया गया था, एकत्र हुये। वहां उसका स्वागत किया गया। वहां से आगे बढ़कर और नगर के मंदिरों के दर्शन करता हुआ वह एक मंदिर के पुजारी का अतिथि हुआ। दूसरे दिन राजा ने उसको निमंत्रित किया। और बहुत सी बहुमूल्य वस्तुयें भेट कीं। परन्तु उसने नहीं लिया। इस के बाद हुएनसंग मोक्षगुप्त नामक पुजारी के साथ **ओशीलेनी** नामक मन्दिर में जिस्का वह सभापति था, गया। यह पुजारी बहुत बड़ा विद्वान समझा जाता था। उसने २४ साल तक भारतवर्ष में रहकर धर्मग्रन्थों का और विशेषकर शब्द विद्या शास्त्रका अध्यन किया था। उसने हुएनसंग से कहा कि तुम मेरे पास रहकर सम्युक्त अभिधर्म, कोप और विभाषा ग्रंथ पढ़लो। भारतवर्ष में जाकर क्या करोगे। वह पुजारी हुएनसंग के विद्या और ज्ञान से अनभिज्ञ था। जब उसने पूछा कि क्या तुम्हारे पास योगशास्त्र भी है? उसने उत्तर दिया कि वह तो नास्तिकों की किताब है।

हुएनसंग को यह सुनकर बहुत रंज हुआ। मोक्षगुप्त की जो प्रतिष्ठा उसकी द्रष्टि में थी वह भी जाती रही। फिर उसने शास्त्रार्थ और उपदेश देने में उस प्रसिद्ध पुजारी को नीचा दिखा दिया। प्रायः ६० दिन वहां ठहरने के बाद वह राजा के पास मिलने आया। राजा ने यात्रा की सब सामग्री पूरी करदी।

पो-ह-लु-ह किन्या (बालुका) में ठहरकर और मरुस्थल को पार करके वह लंग पर्वत पर पहुंचा। यह बहुत ऊंचा पर्वत है। और भयानक है। इस पर सदा बरफ़ छाया रहता है।

वह गरमी में भी नहीं पिघलता। यहां हवा जोर से चलती है। और इसके साथ बरफ़ के टुकड़े उड़ते फिरते हैं। कहीं भी सूखी जगह नहीं है। यहां बरतन को लटकाकर खाना पकाया जाता है। बरफ़ पर चटाई बिछाकर सोया जाता है। इस पहाड़ी पर यात्रा में कई मनुष्य और कई जानवर नष्ट होगये। आगे चलकर उसे **सुयेह** देश मिला। यहां तुर्क

जाति का एक खान राज करता था। वह हुएनसंग को देख कर बहुत प्रसन्न हुआ। और अपने एक अफ़सर को आज्ञादी कि तुम हुएनसंग के ठहरने का प्रबंध करो। मैं तीन दिन के बाद शिकार से वापिस आऊंगा। तीन दिन बाद वह वापिस आया। और हुएनसंग को अपने साथ लेगया। उसका डेरा खूब अच्छी तरह से सजा हुआ था। वहां ऐश व आराम की सब सामग्री वर्तमान थी। यद्यपि खान एक ऐसी जाति का राजा था, जिसका कि कोई देश नहीं और जो यहां वहां घूमा करती है, तथापि उसके यहां भी राजाओं महाराजाओं जैसा ठाठ था। तुर्क लोग अग्नि के उपासक हैं। वे लकड़ी की तिपाई पर नहीं बैठते क्योंकि उसमें भी अग्नि होती है। वे चटाई पर बैठते हैं। प्रार्थना के समय वे खड़े रहते हैं। जब हुएनसंग और खान आपुस में बात चीत करते थे तब चीन के महराजा के यहां से कुछ लोग वहां आये। खान ने उनकी खूब खातिरदारी की; उनको निमंत्रित किया और उनके साथ खूब शराब पी। हुएनसंग को शराब की जगह अंगूर का अर्क पिलाया गया। सब लोग शराब में मस्त होगये। बाजे भी बजते रहे। जब सब मदहोश होने लगे तब भोजन लाया गया। औरों के लिये नाना प्रकार के मांस के भोजन लाये गये। परन्तु हुएनसंग के लिये चांवल, रोटी, और शाक भाजी ही परसी गई। भोजन के बाद लोगों ने हुएनसंग से कुछ धर्मोपदेश करने को कहा। उसने उसको स्वीकार किया और प्रेम और मोक्ष विषय पर व्याख्यान, जो सबों को प्रिय था, दिया। राजा ने उसके धर्म पर मुग्ध होकर हुएनसंग के सामने सिर झुका दिया। वह बौद्ध धर्मी हो गया। उसने हुएनसंग से प्रार्थना की कि वह भारत देश को न जावे। वहां बहुत गर्मी पड़ती है। मनुष्य आधे नंगे बदन रहते हैं और वहां देश में किसी तरह की शोभा और प्रबंध नहीं है। हुएनसंग ने उत्तर दिया कि मैं वहां देश की शोभा देखने नहीं जाता हूं। किन्तु मैं बौद्धधर्म के श्रेष्ठ ग्रन्थों के अध्यन करने के लिये जा रहा हूं।

खान न यह सुनकर आस पास के मार्ग वाले राजाओं के नाम पत्र लिख दिये और एक चीनी नवयुवक को हुएनसंग के साथ **कापिसा** तक जाने को दिया। स्वयं कई मील तक अपने अफसरों के साथ उसे

पहुंचाने गया। हुएनसंग सफ़र करते **पिगंयू** पहुंचा। यहां खान गरमी के दिनों में रहता था। इसी तरह एक नगर से दूसरे नगर में होते हुये और सैकड़ों मीलों की यात्रा करके वह सामोकीन (प्रसन्न देश) में पहुंचा। यहां के नागरिक और राजा दोनों ही बौद्धधर्म से अनभिज्ञ हैं। वे अग्नि के उपासक हैं। वे अग्नि के सामने यज्ञादिक किया करते हैं। उस देश का राजा उसका अनुयायी बन गया। जब हुएनसंग के दो साथी प्रार्थना करने गये तब लोगों ने मशालें जला कर उनका पीछा किया। राजा को जब मालूम हुआ तब वह बहुत नाराज हुआ। जब लोगों को मालूम हो गया कि राजा इनकी प्रतिष्ठा करते हैं तब तो सब ही इनके पास आने लगे और शिक्षा प्राप्त करने लगे। हुएनसंग ने उनमें से बहुतों को शिक्षा देकर पुजारी बनाया और वहां कई मठ स्थापित किये।

यहां से रवाना होकर हुएनसंग **ख्वारज़म** पहुंचा। वहां से आगे बढ़कर लोहे के पर्वत और द्वारों और **सीहून** नदी को पार करके वह **कुन्दज़** नामक स्थान में पहुंचा। यहां **शीहू** का बड़ा बेटा तातूशाह रहता था। जब इस खान को खबर मिली कि हुएनसंग उसके नाम पत्र लेकर आया है तब उसे बड़ा शोक हुआ, क्योंकि वह उसकी सहायता नहीं कर सक्ता था। इन दिनों खान बिमार था। परन्तु उसने कहला भेजा कि यदि मैं अच्छा हो गया तो स्वयं तुम्हारे साथ हिन्दुस्तान चलूंगा। परन्तु वह अच्छा नहीं हुआ। इसकी मृत्यु हो गई। इस लिये हुएनसंग को यहां कुछ दिन ठहरना पड़ा। जब नये **खान** सिंहासन पर बैठ चुके तब उनसे हुएनसंग ने प्रार्थना की कि उसे एक मार्ग दर्शक और कुछ यात्रा की सामग्री दी जावे। उसने उत्तर दिया कि आप बाख्तर जावें और वहां के तीर्थों के दर्शन करके आगे जावें। हुएनसंग उन पुजारियों के साथ जो नये खान के राज्यारोहण के अवसर पर बाख्तर से आये थे वहां चला गया। वहां से वह बलख गया। यहां सौ संघाराम हैं। उनमें हीनयान सम्प्रदाय के तीन हजार यति निवास करते हैं।

बलख से रवाना होकर हुएनसंग प्रज्ञाकार के साथ गाज़ नगर पहुंचा। वहां से तुखारा और बामियान होता हुआ और कई एक मरुस्थल और

मांगों को तय करके वह कापिसा की सरहद पर पहुंचा। यहां उसे आर्य्यदास और आर्य्यसेन नामक दो पुजारी मिले। वे महासंघिका सम्प्रदाय के पुजारी थे। वे उसे देख बड़े प्रसन्न हुये। राजधानी के पूर्व में एक संघाराम है जिसमें शाक्य देव की मूर्तियां रखी हुई है। यहां क्षत्री वंश का एक राजा राज्य करता है। यहां प्रायः एक सौ संघाराम हैं। इस स्थान पर हुएनसंग को विद्वान पुजारियों से शास्त्रार्थ करना पड़ा। यहां पर हीनयान सम्प्रदाय का एक विहार है। यह मन्दिर चीन देश के **राजकुमारों** का बनाया हुआ है। वे यहां नजरकैद रखे गये थे। पुजारियों ने उस से कहा कि जब तुम चीन देश से आते हो तो पहिले यहां ही ठहरो। इस विहार में चीनी राजकुमारों द्वारा संचित द्रव्य है। वह पूर्वीय द्वार के दक्षिण में गड़ा हुआ है। इसको कोई भी बाहर निकालने में समर्थ नहीं हुआ। जब कोई इसके निकालने का प्रयत्न करता है तब नानाप्रकार की विघ्नबाधायें उपस्थित होतीं हैं। पुजारियों ने हुएनसंग से प्रार्थना की कि वह उस द्रव्यसंग्रह के प्रेत-रक्षकों से प्रार्थना करे, ताकि आवश्यकतानुसार द्रव्य निकालने की वे अनुमति दे देवें। हुएनसंग की प्रार्थना स्वीकृत हुई। संरक्षकों ने वहां से उतना द्रव्य विना किसी उपद्रव के निकालने दिया जिसकी वहां के पुजारियों को जरूरत थी।

वहां से विदा होकर हुएनसंग भारतवर्ष की सरहद पर आगया। इसके उत्तर के देशों में म्लेच्छों का निवास है। यहां से वह **नगरहारा** पहुंचा। और छाया के दर्शण कर वह गांधार की राजधानी पुरुषपुर आया। यहां कनिष्क के बनाये बहुत से स्मारक हैं।

आगे मंगाली नगर मिलता है। यह बड़ा उन्नत प्रदेश है। बड़ा सुहावना स्थान है। इस नगर के पूर्व में एक बड़ा स्तूप है जहां बुद्धदेव ने पहले जन्म में कई चमत्कारिक कार्य किये थे। कहते हैं बुद्धदेव ने अपने एक पूर्व जन्म में बुद्धावतार के पहिले ऋषि के रूप में जन्म लिया था और कलि राज के हेतु उसने अपने शरीर के खंड २ करवा दिये थे। इस नगर के उत्तर पूर्व [ईशान] में एक पहाड़ी देश है जहां एक सुहावना

सोता है। इसका नाम नाग अपोलोलो (अपालाल) है। यहां से सुवस्तु नदी निकलती है। यह बड़ा ठंडा देश है। यहां गरमी और बसंत ऋतु में भी शीत पड़ती है और कोहरा गिरता है। सबेरे शाम बरफ गिरता है। यहां से यात्री रोह तक आया यहां एक स्तूप है इसे महाराज अशोक ने बनवाया था। इस स्थान पर **तथागत** राजा **मैत्रेये बल** के रूप में अवतरित हुए थे। और उन्होंने अपने शरीर को पांच यक्षों को दान दिया था।

हुएनसंग से तीर्थ और चमत्कारिक स्थानों को देखता हुआ तक्षशिला देश में पहुंचा। इस नगर के, उत्तर में थोड़ी दूर पर एक और स्तूप है जिसे महाराज अशोक ने बनवाया था। इस स्तूप की धरती (प्रथ्वी) से सदा प्रकाश निकलता रहता है। जब तथागत बुद्ध तत्व को प्राप्त कर रहे थे तब वह एक बड़े देश के राजा थे और उनका नाम चन्द्रप्रभ था। उस स्थान पर उन्होंने अपना सिर तक दे डाला और इसके बार १००० जन्मों में वे बुद्ध हुये। इस मंदिर के पास एक संघाराम है। जहां ऋषी कुमारलब्ध ने बहुत से शास्त्र बनाये थे। यहां से हुएनसंग सम्हापुर नामक देश में पहुंचा। तक्षशिला के उत्तरीय सीमा से रवाना होकर और सिन्धु नदी को पार करके वह एक दर्रे पर पहुंचा जहां प्राचीन काल में महासत्व ने अपने शरीर को शेरनी के सात बच्चों को खिला दिया था। उसके खून से जितनी जमीन रंग गई थी वह अब तक लाल है। और जो वस्तुयें इस जमीन में ऊगती हैं उनका भी रंग लाल होता है।

इस देश से आगे बढ़कर दक्षिण पूर्व में उरषा देश है। आगे काश्मीर देश है। हुएनसंग यात्रा करता हुआ उस देश में पहुंचा। इस देश में एक सौ विहार और पांच हजार पुजारी हैं। चार बड़े विशाल और उत्तम बने हुये स्तूप वर्तमान हैं। इनको भी महाराज अशोक ने बनवाया था। ज्योंही इस देश के राजा को हुएनसंग के आने का समाचार मिला उसने अपनी मां और भाई को घोड़ों और रथों के साथ उसके स्वागत करने के लिये भेजा।

रात्रि को उस मन्दिर के पुजारियों ने स्वप्न देखा कि चीन से हुएनसंग नामक एक पुजारी इस देश में धर्म ग्रन्थों के अध्ययन के

लिये आया है। उसके साथ बहुत सी श्रेष्ठ प्रेतात्मायें हैं। वह तुम्हारे बीच में है और इस समय सो रहा है। स्वप्न देखते ही पुजारी जागे और धर्म पुस्तकों का पाठ ज़ोर ज़ोर से करने लगे। फिर सब ने अपना २ स्वप्न एक दूसरे से कहा और प्रार्थना में लग गये।

जब हुएनसंग राजधानी के पास पहुंचा तो वह एक धर्मशाला में ठहरा। राजा अपने मंत्री के साथ उससे मिलने को गया। उसने उसे एक हाथी पर सवार कराया और नगर भर में घुमाया। बड़ी खातिर की और अपने महल में ठहराया। जब राजा को इसके इतनी दूर आने का कारण और इसकाउद्देश मालूम हुआ तब उसने बीस आदमी ऐसे दिये जो उसके लिये धर्म ग्रन्थों की नकलें कर सकें। और पांच मनुष्यों को उसकी सेवा सत्कार के लिये नियत किया। इस स्थान में हुएनसंग को एकभारी विद्वान मिला जो कि बौद्धधर्म का अनुयायी था। उससे हुएनसंग ने बहुत कुछ सीखा। वह दिन और रात भिन्न २ विषयों पर उपदेश देता रहा। वह प्रातः काल में कोष; दोपहर को न्यायानुसार शास्त्र, और रात्रि के पहिले पहर में हेतु विद्या शास्त्र को पढ़ाता था।

इस के उपदेश को सुनने को बहुत से विद्वान व पुजारी इकट्ठे होते थे। हुएनसंग. उसके उपदेश को ध्यान पूर्वक सुनता रहा और जो २ बातें उसने कही थीं उन्हें याद करता गया। इस बात को उस विद्वान ने ताड़ लिया और भरी सभा में उसने इस चीनी यात्री की विद्या और बुद्धि की प्रशंसा की। उसकी अवस्था ७० वर्ष की थी।

इस अवसर पर वहां और भी विद्वान एकत्र थे। महायान के विशुद्ध सिंह। जिनबन्धु, सर्वस्तवादिन सम्प्रदाय के सुगतमित्र, वसुमित्र और महासंघिका सम्प्रदाय के सूर्यदेव और जिनत्रात। उन सब से हुएनसंग का परिचय हुआ। काश्मीर प्राचीन काल से ही विद्या और धर्म की खान माना जाता है। यहां भारी २ विद्वान हो चुके हैं जिन्होंने बौद्धधर्म के प्रचार में खूब प्रयत्न किया है। और जो बौद्धधर्म के गौरव के पात्र हैं। इस देश के बहुत से विद्वानों ने हुएनसंग से धर्म चर्चा और शास्त्रार्थ किया परन्तु वह सब पर बाजी लेगया। प्राचीन काल में काश्मीर में नागों

का राज था। बुद्ध देव के निर्वाण काल के पचास वर्ष बाद वहां आनन्द के शिष्य मध्यान्यटिक का राज्य रहा। वह इसी वंश में से था। उसने ५०० संघाराम बनवाये थे। और बहुत से धार्मिकों, विद्वानों और साधुओं को बुलाकर काश्मीर में बसाया था। उसके बाद महाराज कनिष्क जो गान्धार का राजा था और बुद्धदेव के निर्वाण से ४०० वर्ष बाद हुआ उसने पार्श्विक के कहने से एक ऐसी महा सभा एकत्रित की जहां बौद्धधर्म के सिद्धान्तों को वह नया रूप मिला **जिसे महायान कहते** हैं। इस महा सभा के एकत्रित करने की आवश्यक्ता इस लिये हुई थी कि बौद्धधर्म के सिद्धान्त गड़बड़ हो गये थे।जिनको तर्तीब में लाने की जरूरत थी। इस महा सभा में ५०० विद्वान एकत्र हुये थे। महाविद्वान वसुमित्र भी इन में शामिल था। इस महासभा में सूत्रपितक पर उपदेश शास्त्र निर्माण किया गया और विनय और अभिधर्म पर भाष्य लिखे गये राजा ने आज्ञा दी कि ये तीनों सभाष्य ग्रंथ तांवे के पत्रों पर अंकित कराये जावें।

जब यह काम हो चुका तब राजा ने उनको एक पत्थर के अन्दर बंद कराके उन पर ताला और मुहर लगादी और एक विशाल मीनार बनवा कर उस पत्थर को उसके अन्दर चुनवा दिया।

[इस देश में दो वर्ष रह कर ह्युएनसंग ने धर्म ग्रन्थों का पाठ किया और तीर्थों के दर्शन किये]। वहां से बिदा होकर वह दूसरे देशों की ओर बढ़ा। काश्मीर से चल कर वह **पुंच्छ** में आया। वहां से **राजपुरी** और **टक** होता हुआ दो दिन की यात्रा करके वह चन्द्रयाघ (चिनाव) नदी को पार कर जयापुर नगर में पहुंचा।

इस स्थान से चलकर वह शाकल नगर में आया। जहां के संघाराम में कोई एक सौ पुजारी रहते हैं। इस स्थान पर वसुबंधु बुद्ध सत्व ने शंगी तैलुन नामक पुस्तक को लिखा था। इस मंदिर के पासही एक और मंदिर है जहां चार दिन तक श्रीबुद्ध देव ने धर्मोपदेश दिया था और जहां उन्होंने अपना पद चिन्ह छोड़ा है। इस स्थान से चलकर वह पलास के जंगल को पार करके नरसिंह नगर में पहुंचा। जंगल में डाकुओं का एक झुन्ड मिला। उन लोगों ने ह्युएनसंग और उसके साथियों का माल व

असबाब और कपड़े लत्ते लेकर उनको वध करना चाहा। वे हुएनसंग और उसके कुछ साथियों को एक स्थान पर लेगये। यहां दलदल था। और कटेली झाड़ियां लगी हुई थीं। यहां हुएनसंग और उसके साथी दलदल के तटके एक सोते को तैर कर भागे और कई कोस तक भागे चले गये।

आगे जाकर उनको एक ब्राह्मण हल चलाता हुआ मिला। उससे इन लोगों ने डाकुओं का हाल बतलाया। वह हल रोक कर इन सब को लेकर अपने गांव में पहुंचा और वहां ढोल बजाकर उसने कोई ८० आदमी एकत्र कर लिये। सशस्त्र होकर सब लोग वहां पहुंचे जहां कि डाकू थे। परन्तु डाकू देखते ही भाग गये।
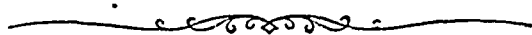
अध्याय चवालीसवां

मथुरा-कन्नौज-आदि की यात्रा.

डाकू लूटका सब माल साथ ले गये। हुएनसंग आगे बढ़ा और अपने साथियों के बंधन को काटा, जिनके हाथ पैर डाकुओं ने बांध दिये थे। उन्हें पहिनने को कपड़े दिये और अपने साथ गांव में ले गया।

गांव में पहुंचते ही उन्हें बहुत रंज हुआ, और वे लोग रोने पीटने लगे। लेकिन हुएनसंग हंसता ही रहा। इसपर उसके साथियों ने कहा कि हमारा माल अस्बाब लुटगया है और हम रो रहे हैं। बड़े आश्चर्य की बात है कि आप को हंसी आती है! उसने कहा कि जीवन ही सर्व श्रेष्ठ वस्तु है, जब वह बच गया तब माल अस्बाब की क्या परवाह। धर्म ग्रंथों में ऐसा लिखा है। फिर तुम अपने चोरी गये हुए माल पर क्यों रंज करते

हो। इस उत्तर से उनको संतोष हुआ।

हिउनसंग ने रात गांव में बितायी। वहां से चल कर वह **टक** की पूर्वीय सीमा पर पहुंचा। वहां से वह एक बड़े नगर में पहुंचा। इस के पश्चिम में आम्र वृक्षों का एक विस्तृत घना जंगल है। यहां एक ब्राह्मण रहता है जिसकी अवस्था सात सौ वर्ष की है। परन्तु देखने से वह ३० वर्ष से अधिक नहीं मालूम होता। वह बड़ा बुद्धिमान है। इसमें शास्त्रार्थ करने की खास योग्यता है। वह शास्त्रों और वेदों का भी ज्ञाता है। उसके दो शिष्य हैं जिनकी अवस्था भी सौ वर्ष से अधिक है। वह हुएनसंग को देख कर बड़ा प्रसन्न हुआ और उसका खूब सत्कार किया। इस देश में अधिकांश नास्तिक रहते हैं। बौद्ध धर्मावलम्बियों की संख्या कम है।

हुएनसंग की प्रसिद्धि काश्मीर में बहुत हो चुकी थी। इस लिये इस ब्राह्मण ने एक आदमी को नगर में भेज कर यह घोषणा करादी कि जो विद्वान चीन से आया है उसे डाकूओं ने बहुत सताया, उसके कपड़े इत्यादि छिन गये, परन्तु वह सकुशल है और मेरे यहां आया हुआ है। अब बौद्धों को धर्म चर्चा करने का अच्छा अवसर प्राप्त है। इस समाचार के सुनते ही ३०० आदमी जमा हो गये और उसके लिये वे कपड़े भी साथ लाये। उसने कुछ मंत्र और श्लोक पढ़े और लोगों को उपदेश दिया जिसे सुन कर वे लोग जो धर्म को भूले हुए थे फिर उसका पालन करने लगे। उन्होंने अपनी भूल पर पश्चात्ताप किया और धर्म जविन व्यतीत करने का प्रण किया।

इसके बाद हुएनसंग ने सब कपड़े लोगो में बाट दिये और जो बच गये उन्हें उस ब्राह्मण को भेंट कर दिये। यहां वह एक मास ठहरा, और सूत्रों की शिक्षा ग्रहण की। यहां से चल कर वह **चिनपती** नामक नगर में पहुंचा और एक बिहार में ठहर गया। यहां एक विद्वान पुजारी विनितप्रभ रहता था जिस ने पंच स्कंधशास्त्र, बिद्यामात्रसिद्धिशास्त्र, त्रिदश शास्त्र इत्यादि पर भाष्य लिखे थे। वह यहां एक मास ठहरा, और उसने इन शास्त्रों को पढ़ा। तदपश्चात उसने अभिधर्म शास्त्र, अभिधर्म प्रकरण, शासन शास्त्र न्यायद्वार तर्क शास्त्र इत्यादि की शिक्षा गृहण की। यहां से आगे चलकर और जालन्धर के नगरधन में ४ मास ठहरता हुआ चंद्रवर्मा नामक

प्रसिद्ध भिक्षु से प्रकरणपादविभापाशास्त्र पढ़ा। फिर कुलुटह नामक देश होते हुए सताद्रु देश गया. एवम् पार्यात्र देश घूमता हुआ मथुरा नगर में प्रवेश किया। इस स्थान में बहुत से विहार और संघाराम हैं। जिन में शाक्य मुनि तथागत और उन के शिष्यों के स्मारक बने है। यहां सारिपुत्र मौदगल्यायन, पूर्ण मैत्रेयानी पुत्र, उपाली, आनन्द, राहुल और मंजुश्री के स्मारक वर्तमान हैं, यहां प्रति वर्ष त्योहारों में पुजारी लोग अपने २ विहार में आते व पूजन प्रार्थना व ध्यान करते हैं। इस नगर के पास एक पहाड़ी है जहां पर उपगुप्त ने एक संघाराम बनाया था। इस में उसके बाल और नाखून स्मारक रूप रखे हुए हैं। आगे **स्थानेश्वर** देश व **श्रुघ्न** नगर है। यमुना नदी इस देश की पूर्वीय सीमा से निकल कर नगर को द्विभाजित कर बहती है। नगर के उत्तर में पहाड़ और पश्चिम में कई मील की दूरी पर गंगा नदी है जिसका पानी मधुर और निर्मल है। भारतवर्ष में इस नदी की बड़ी प्रतिष्ठा है। जो लोग इस में स्नान करते हैं उनके पाप नष्ट हो जाते हैं। जो लोग इस के जल को पीते हैं उन पर कोई आपत्ति नहीं आती। और मरने के बाद वे स्वर्ग को जाते हैं। इस नदी में नित्य हजारों आदमी स्नान करने आते हैं। तट पर मेला सा लगा रहता है।

इस देश में एक प्रसिद्ध विद्वान जयगुप्त रहता है। इसने बौद्धधर्म के समग्र ग्रंथों का भली भांति अध्ययन किया है। हुएनसंग ने उसके पास शीत काल और गर्मी का अर्द्ध समय बिताया और वहीं शिक्षा ग्रहण की। तदतंर गंगा नदी पार कर वह मतीपूरह देश में पहुंचा।

इस देश का राजा चंद्रवंशी है। देश में १० विहार हैं जहां ८०० पुजारी रहते हैं और सब हीन यान पंथ पर चलने वाले हैं। इस देश के पुजारियों का आचार्य पहिले महायान पंथ का अनुयायी था। वह बाद में दूसरे पंथ में चला गया। इस देश में सब से प्रसिद्ध विहार वह है जिसे गुणप्रभ ने बनवाया था।

इस के आगे एक विहार और है जहां कोई २०० विद्यार्थी हीनयान पंथ की शिक्षा पाते है। इसी विहार में प्रसिद्ध विद्वान **संघ-भद्र** ने अपना जीवन

विताया था। वह काश्मीर का निवासी था और अपने समय का प्रसिद्ध विद्वान था। कोष कारिका निर्माण करने के बाद उसे वसु बन्धु बौद्धिसत्व से मिलने की उत्कट इच्छा उत्पन्न हुई। यह भी प्रख्यात विद्वान पुरुष हो चुका है जिसके पास देवता भी शिक्षा ग्रहण करते थे। परन्तु संघभद्र को यह सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ। उसकी मृत्यु हो गई। संघभद्र की मृत्यु के बाद वसुबन्ध ने उसके ग्रंथ देखे और उसकी योग्यता की बड़ी प्रशंसा की। उसके ग्रन्थों का नाम उसने न्यायानुसार शास्त्र रखा। लोगों ने एक कुंज में उसका एक स्मारक बनाया जो अब तक वर्तमान है। इस कुंज में एक और विद्वान विमलमित्र का स्मारक बना है। यह भी काशमीर का रहने वाला बड़ा विद्वान था। इसने वसुबन्धु की शिक्षा का खूब प्रचार किया। कुछ ग्रंथ भी लिखे। तदन्तर मृत्यु को प्राप्त हुआ।

इस देश में एक विद्वान और हो गया है जिस का नाम मित्र सेन था। यह गुण प्रभ का शिष्य था और बौद्धधर्म के दोनों सम्प्रदायों का अनुभवी विद्वान था। इसके पास हुएनसंग छै महिने तक रहा और उससे बौद्ध धर्म के ग्रन्थों को पढ़ा। इस देश के उत्तर पश्चिम में कई सौ मील की दूरी पर एक देश **ब्रह्मपुर** है। इस के दक्षिण पूर्व में **अर्दाक क्षेत्र** है। उसके आगे गंगा के उस पार **वीरासन** और उसके आगे कापिथ देश है। इस देश की राजधानी से थोड़ी ही दूर पर एक बिहार है। इस विहार में तीन सीढ़ियां थीं जो एक दूसरे के बराबर रखी हुई थीं। कहते हैं कि श्री बुद्धदेव प्राचीन काल में स्वर्ग लोग से इन्हीं सीढ़ियों पर से उतर कर आये थे और राज्य महिषी माया को शिक्षा देकर जम्बूद्वीप चले गये थे। कई शताब्दियों तक ये सीढ़ियां उस विहार में रखी रहीं। परन्तु हुएनसंग के समय में वे लोप हो गई थीं। उनकी जगह पर श्रद्धालु राजाओं ने रत्न जटित नई सीढ़ियां ७०-७० फीट लम्बी बनवा दी हैं। सीढियों की चोटियों पर एक मंदिर बनवा दिया गया है। इसमें बुद्धदेव की मूर्ति रखी है। इनके दायें बायें वृम्ह देव और इंद्र की मूर्तियां है। इस मंदिर के पास ही एक स्तंभ है जो ७० फुट ऊंचा है। इसे महाराज अशोक ने बनवाया था। इसके पास ही जरा ऊंचाई पर एक मार्ग है जहां बुद्धदेव टहला करते थे।

इस से आगे उत्तर पश्चिम की तरफ **कन्नौज** का देश है। इस देश में सौ १०० संघाराम हैं। उनमें दस हजार पुजारी रहते हैं। महायान और हनियान दोनों मत के पुजारी यहां पर मिलते हैं। यहां का राजा वैश्यजाति का राजपूत है। इसका नाम श्रीहर्षवर्द्धन है इसके पिता का नाम प्राकर वर्द्धन था। इसके बड़े भाई का नाम राज्यवर्द्धन था। यह राजा बड़ा दयालु प्रजा वत्सल और भक्त है। सब ही लोग उसकी प्रशंसा करते हैं।

जब राज्य वर्द्धन कन्नौज में राज्य करता था तब बंगाल प्रांत में कर्ण सुवर्ण का राज्य शंसक के अधीन था। वह राज्यवद्धर्न की वृद्धि व लोकप्रियता से बहुत जला करता था। उसने एक षटूयंत्र रचकर उसको मरवाडाला। इस घटना से राज्य भर में शोक छा गया। मंत्री व राज्य कर्मचारियों को भी बहुत रंज हुआ।

बाद में सबने एक मत होकर उसके छोटे भाई शिलादित्य को गद्दी पर बिठाया। इस का पूरा नाम श्रीहर्षवर्द्धनशिलादित्य है।

यह राजा बड़ा न्याय प्रिय है। यहां तक कि देवता भी उसकी प्रतिष्ठा करते हैं। उसकी प्रभुता भी चारों ओर प्रसिद्ध है। उसने अपने भाई की मृत्यु का बदला लेने का पूरा निश्चय कर लिया। वह थोड़े ही दिनों में सारे हिन्दुस्थान का छत्रपति बनगया।

इस राजा को जब युद्ध से फुरसत मिली तब इसने अस्त्र शस्त्र आदि इकट्ठे करना आरंभ किया। धार्म्मिक जीवन व्यतीत करने लगा। मांस खाना छोड़ दिया। और प्रजा से भी मांसाहार छुड़ा दिया। उसने स्थान २ पर विहार बनाये। बौद्ध संघाराम मन्दिर और मठ तैयार कराये। प्रतिवर्ष कई सप्ताह तक वह पुजारियों को अपने पास से भोजन कराता है।

श्री हर्षवर्द्धन हर पांचवे वर्ष एक बड़ा उत्सव मनाता है, जिसे महामोक्ष परिषद कहते हैं। इसमें वह बहुत दान करता है। कन्नौज के पास ही एक स्तंभ है जो गंगा के तट पर स्थित है। यह २०० दो सौ फीट ऊंचा है, इसे महाराज अशोक ने बनवाया था। यहां पर स्वयं

भगवान बुद्ध ने लोगों को उपदेश दिया था। हुएनसंग इस देश में गया और कन्नौज नगर के भद्र विहार में ठहरा। यहां वह वीरसेन से जो बौद्धधर्म का अच्छा विद्वान था, बुद्धदास कृत वर्मीविभाष व्याकरण पढ़ता रहा।

हुएनसंग ने और ६०० मील की यात्रा समाप्त करके दक्षिण पूर्व दिशा से गंगा नदी को पार किया। वहां से अयोध्या पहुंचा। यहां भी प्रायः एक सौ विहार है और उनमें भी कई हजार पुजारी रहते हैं। यहां बौद्धधर्म के दोनों पंथों के अनुयायी हैं।

राजधानी में एक संघाराम है, जहां ठहर कर बुद्धसत्व वसुबन्धु ने हीनयान और महायान मत पर ग्रंथ निर्म्माण किये थे। वे वहां के लोगों को उपदेश भी देते रहे। राजधानी के उत्तर पश्चिम में गंगा के किनारे एक बड़ा संघाराम है। उसमें एक स्तूप है, जो दो सौ फीट ऊंचा है। इसे महाराजा अशोक ने बनाया था। यहां पर तीन महीने तक भगवान बुद्ध ने धर्मोपदेश दिया था। इस संघाराम के पास एक स्थान है, जहां पूर्व काल के चारों बुद्ध तपस्या करते थे।

राजधानी से कुछ मील की दूरी पर एक पुराना संघाराम है। यह दक्षिण व पश्चिम दिशा में स्थित है। यहां असंघ बुद्ध-सत्व ने बौद्धधर्म का उपदेश किया था।

असंघ गान्धार का रहने वाला था। और बुद्धदेव के निर्वाण काल के पांच सौ वर्ष बाद पैदा हुआ था। इसने महीशासक सम्प्रदाय के विद्यालय में जाकर शिक्षा प्राप्त की थी। इसके बाद उसने महायान पंथ के विद्यालय में शिक्षा पाई। असंघ बड़ा योग्य विद्वान निकला और उसने श्रेष्ठ महायान संपरिग्रह शास्त्र, शास्त्रकारिका अभिधर्मशास्त्र विद्या मात्रशास्त्र और कोष इत्यादि शास्त्र लिखे। अयोध्या से चल कर हुएनसंग गंगा को पार करके, एक नाव पर बैठ कर पूर्व की ओर बढ़ा। वह हयामुख देश में जाना चाहता था। कोई ४०० मील चलकर नदी के दोनों तट पर से एक घना जंगल मिला। यहां डाकुओं की दस नौकायें छिपी हुई थीं। इन्होंने जहाज पर धावा

किया। कुछ लोग डर के मारे जहाज पर से नदी में कूद पड़े। डाकुओं ने जहाज को पकड़ लिया और उसे किनारे पर ले आये। वहां उन्होंने सब की तलाशी ली। जो कुछ रुपया पैसा माल असबाब था सब उतरवा लिया। ये डाकू काली [दुर्गा] के उपासक हैं। और प्रति वर्ष वसंत में किसी सुन्दर मनुष्य का बलिदान करते हैं।

इन डाकुओं ने देखा कि हुएनसंग सुंदर सुडौल और हर तरह से बलिदान का पात्र है। वे आपुस में कहने लगे बलिदान के लिये यह मनुष्य बहुत अच्छा मिला। उनकी इच्छा को जानकर हुएनसंग ने कहा यदि मेरे शरीर को बलि के लिये ठीक समझते हो तो अच्छा है, मुझे कुछ भी एतराज नहीं है, परन्तु याद रहे मैं बहुत दूर देश का रहने वाला हूं और धर्म ग्रन्थों के अध्ययन करने के लिये बौद्ध और गिरधर पर्वत पर जाने के लिये यहां आया हूं। अभी मेरा उद्देश पूरा नहीं हुआ है। इसलिये यदि तुम मुझे मार डालोगे तो तुम्हारी हानि होगी। यह सुनते ही और यात्रियों ने जो साथ में पकड़े गये थे डाकुओं से कहा कि तुम इसे जाने दो, और इसकी जगह हमको मारडालो परन्तु डाकू राजी न हुए। डाकुओं के सर्दार ने अपने साथियों से कहा कि जाओ एक स्थान बलि के लिये नियत करो और वहां सब सामग्री एकत्र करो। जब सब सामान ठीक होगया तब वे हुएनसंग को वहां ले गये वहां वह बराबर हंसता रहा। उसका मुख कमल खिलाही रहा। उसको जराभी घबराहट न मालूम हुई। यह देख कर डाकू दंग रहगये। परन्तु बलिदान के संकल्प को इन्होंने नहीं छोड़ा। तब हुएनसंग ने इनसे कहा कि आप लोग थोड़ी देर के लिये मेरे पास से हट जावे। ताकि मैं मृत्यु के लिये तैयार हो जाऊं।

डाकू हट गये। अब हुएनसंग ने मन को एकाग्र करके तूपिता स्वर्ग के रहने वाले बुद्ध सत्व **मैत्रेय** की प्रार्थना की कि तू यहां प्रकट हो जाता तो मैं तेरे दर्शन करके योगाचार्य भूमिशास्त्र को प्राप्त कर लेता। मैं चाहता हूं कि तुझ से धर्म तत्व को सुनूं और इसके बाद इन डाकुओं के हाथ से अपने प्राणों का विसर्जन करूं। और **फिर यहीं दो बारह जन्म लेकर** इनको सत्पथ पर लाने की शिक्षा दूं।

जब हुएनसंग ध्यानमग्न था तब उसे मालुम हुआ कि वह सुमेरू

पर्वत से भी ऊंचे स्थान पर चढ़गया है और स्वर्ग लोक में जा मैत्रेय के लोक में पहुंचा है। उस समय उसकी आत्मा आनन्द में थी। उसी समय एक बड़े जोर की आंधी आई। वृक्ष प्रथ्वी से उखड़ने लगे और नदी लहरें मारने लगीं। चारों ओर अंधकार धुंधकार व हाहाकार मचगया। यह दशा देखकर डाकू बहुत डरे। उन्होंने दूसरे यात्रियों से पूछा कि यह कौन महात्मा है। कहां से आया है। उन्होंने बतलाया कि वह साधु है। चीन देश से आया है। जावो उससे क्षमा मांगो न जाने आगे और क्या हो और तुम लोगों पर कैसी आपत्ति आवे।

डाकू सहम गये। उन्होंने क्षमा मांगना चाहा। वे सब हुएनसंग के पास गये और उसके सामने सबने सिर झुका दिया। एक डाकू ने उसे छूआ। हाथ लगते ही उसने नेत्र खोल दिये। उसने डाकुओं से पूछा कि क्या मेरे बलिदान का समय आगया है। परन्तु डाकुओं ने उत्तर में कहा कि अब हम आपका वध नहीं कर सक्ते। इस कार्य के लिये हमारी हिम्मत नहीं पड़ती। हमें अपने इस कृत्य पर बड़ा शोक है। हम सब लोग आपसे क्षमा मांगते हैं। कृपा करके हम लोगों को क्षमा करें। इसके बाद हुएनसंग ने बौद्धधर्मानुसार अविवि नर्क (सब से नीचे नर्क) की दुर्दशा का हाल सुनाया और वहां के कष्ठों का वर्णन किया। उनको समझाया कि नरहत्या और डकैती से बढ़कर कोई पाप नहीं है। डाकुओं ने अपने किये पर पश्चाताप किया। वे कहने लगे यदि हमें हुएनसंग से मिलने का अवसर नहीं मिलता तो हम कभी भी अपने बुरे करमों पर पश्चाताप न कर पाते। उन्होंने पृतिज्ञा की कि आज से वे इस निन्दनीय कृत्य को छोड़ देंगे। इसके बाद उन्होंने लूटमार का माल सबको वापिस कर दिया। उन्होंने बौद्ध धर्म के पाचों नियमों के पालन करने की प्रतिज्ञा की। डाकुओं के पश्चाताप करते ही आंधी पानी जाता रहा। सब ने हुएनसंग को प्रणाम किया। हुएनसंग के इस कर्तव को देखकर उसके साथी यात्री और डाकू सबही आश्चर्य्यमय होगये।

हिन्दुस्थान से दक्षिण की ओर लम्बी यात्रा करके और गंगा के उत्तरीय तटको पार करके वह हयामुख देश मे आया। वहां से ७००

ली आगे चलकर वह **प्रयाग** पहुंचा। नगर के दक्षिण व पश्चिम दिशा में चम्पक वृक्ष के एक घने कुंज में एक स्तूप है जिसे महराज अशोक ने बनाया था। यहां श्री बुद्ध-देव ने नास्तिकों को बौद्ध धर्म का अनुयायी बनाया था। स्तूप के पासही एक विहार है जहां बुद्ध सत्व ने वृहतसत शास्त्र निर्माण किया था। प्राचीन काल से यहां पर धनिक और धार्मिक दोनोंही तीर्थ करने के लिये आते हैं और दान देते हैं। यह भूमिं अति पवित्र मानी जाती है। प्राचीन विधि के अनुसार महाराज हर्षवर्द्धनशिलादित्य ने पांच वर्ष के एकत्रित द्रव्य को इसी स्थान पर ७५ दिन में लोगों को बांट दिया था। इसके दान की महिमा चारों ओर प्रसिद्ध है।

इस स्थान के आगे उत्तर पश्चिम कोण पर एक घना जंगल है जहां घातक पशु और जंगली हाथी रहते हैं। कई सौ मील का सफर तय करने के बाद **कौशम्भी** नगर मिलता है। यहां दस विहार हैं जिनमें तीन सौ पुजारी रहते हैं। नगर के भीतर एक पुराना भवन है, जिसमें बुद्धदेव की एक चन्दन की मूर्ति रखी है। उसके ऊपर पथ्थर का छत है जिसे राजा उदयान ने बनाया था।

इस भवन के दक्षिण में एक टूटा फूटा भवन है. जहां पर पूर्वकाल में सम्य ग्रहस्थ गोशिर रहता था।

नगर से थोड़ी ही दूर दक्षिण को एक और विहार है जिसे गोशिर के नाती ने बनवाया था। इसमें एक २०० दो सौ फीट ऊंचा स्तूप है। इसे महाराज अशोक ने बनवाया था इसके दक्षिण में एक दो मंजला स्तूप है जहां वसुबन्धु ने विद्यासिद्धि शास्त्र निर्माण किया था। इसके दक्षिण में आम के वृक्षों का एक कुंज है। यहां नीव के पत्थरों के खंडहर हैं यहां असंग बुद्धसत्व ने एक शास्त्र निर्माण किया था जिसका नाम प्रकरणार्थ वाक्यशास्त्रकारिका था।

इस स्थान से ५०० मील की दूरी पर विशाखा देश है। यहां कोई २० संग्राम हैं जिनमें ३००० पुजारी रहते हैं। वे हीनयान मत के अन्तर्गत समाल्य पंथ के मानने वाले हैं। उस मार्ग के बाईं ओर जो दक्षिण पूर्व को जाता है एक बड़ा विहार है। इस स्थान पर प्राचीन काल में अर्हत

देवशर्मण ने विज्ञानकायापदशास्त्र जिसमें आत्मा का अभाव सिद्ध किया गया है निर्माण किया था। इसी स्थान पर कई और प्रसिद्ध महात्माओं ने ग्रंथ निर्माण किये थे जिनमें **गोप** नाम विद्वान ने अपने शास्त्र में आत्मा का अस्तित्व सिद्ध किया था। इसके पास ही वह स्थान है जहां बुद्धदेव ने ६ वर्ष तक उपदेश दिया था। इस स्थान पर ७० फीट ऊंचा एक वृक्ष है। यहां पूर्व काल में श्री बुद्धदेव ने अपने दांत साफ किये थे। और दातून को जमीन के ऊपर फेक दिया था इस दातून ने जड़ पकड़ लिया और उससे यह बड़ा वृक्ष उत्पन्न हुआ। बार २ विधर्मियों ने उस को काटा परन्तु वह पुनः हरा होता गया। उसके पत्ते डालियां सब हरी रहती हैं।

इस स्थान से कई सौ ली की दूरी पर उत्तर पूर्व दिशा में श्रीवस्ती देश है जहां कई सौ बिहार है। इनमें कई हजार पुजारी रहते है। वे सब समात्य सम्प्रदाक के मानने वाले हैं। बुद्धदेव के समय इस देश में राजा प्रसन्नाजित राज करता था। नगर अब भी वर्तमान है और उसके अन्दर राजा के महल के खंडरात भी वर्तमान हैं। इस नगर के उत्तर की ओर थोड़ी दूरी पर एक स्तूप है। यहां पूर्व काल में एक विशाल सभा भवन था जिसे श्री बुद्धदेव के लिये प्रसन्नाजित ने बनवाया था। उसके पास ही एक ऊंचा स्तूप हे। जहां भिक्षुणी प्रजा पति [जो बुद्धदेव की मौसी थीं] रहनी थीं। इसके पूर्व में एक स्थम्भ है, जो सुदत्त के भवन के खंडरात पर बनाया गया है। उसके पास ही एक स्मारक है जहां प्राचीन काल में अंगुलिमाल्य ने नास्तिकता को त्यागा था। इस नगर से ५-६ ली चलकर दक्षिण में वह कुंज है जहां अनाथ और मुतीम रहा करते थे। यह भी अब उजाड़ है। इसे जति ने बनवाया था। इस कुंज के दांई ओर ७०-७० फीट ऊंचे स्थम्भ हैं जिन्हें महाराज अशोक ने बनवाये थे। एक स्थम्भ में एक स्वर्ण की मूर्ति है जिसे राजा प्रसन्नाजित ने उस समय बनवाया था जब बुद्धदेव अपनी माता को स्वर्ग में उपदेश देने के लिये गये थे।

अध्याय पैंतालीसवां

काशी और मगध देश की यात्रा

इस संघाराम से सौ कदम की दूरी पर एक दरार (खाई) है। इसमें देवदत्त जिसने बुद्धदेव को जहर देना चाहा था जीता समा गया था। इसी के पास एक खाई है। उसमें भिक्षु कुकाली जिसने बुद्धदेव का अपमान किया था जीता समा गया था। यहां से ८०० ली की दूरी पर वह स्थान है जहां **चांशचा** नामक ब्राम्हणी जीवित समा गई थी। इसने भी बुद्धदेव का अपमान किया था। गहराई के कारण इन खाईयों की धरती नहीं दिखती। इस संघाराम के पूर्व में एक मंदिर है जहां पर बुद्धदेव की एक मूर्ति है। यहां उसने विधर्मियों को उपदेश दिया था। राजधानी के उत्तर पश्चिम में एक पुराने नगर के खंडरात वर्तमान हैं। इस नगर में काश्यप बुद्ध का पिता रहता था। यह भद्र कापिल के समय की बात है। उस समय मनुष्य बीस हजार वर्ष तक जीवित रहते थे। इस नगर के दक्षिण में एक स्तूप है जिस को महाराज अशोक ने बनवाया था। इस नगर से ८०० मील की यात्रा करने पर **कापिल वस्तु** का देश आता है। अब यह उजाड़ है। इसका विस्तार चार हजार ली है। राजधानी और आस पास के १००० गांव सब वीरान हैं। इस नगर में राजा शुद्घोधन के समय के स्मृति चिन्ह वर्तमान है। इस नगर के उत्तर में कुछ प्राचीन स्मारक है। जिनमें राज महिषी **महामाया** के स्वप्नों के चित्र अंकित हैं। इसके पास ही एक मकान में रानी की मूर्ति रखी हुई है। इसके पास ही एक चित्र में शाक्य, बुद्धसत्व का अपनी माता के गर्भ में प्रवेश करने का द्रश्य अंकित है। यहां बुद्धसत्व की एक मूर्ति निम्मार्ण की गई है। इस स्थान के उत्तर पश्चिम दिशा में एक संघाराम है जहां ऋषि अशित ने बुद्धसत्व गौतम का जन्म लग्न पत्र तय्यार किया था। नगर के दोनों तरफ वे स्थान हैं जहां बुद्ध देव शाक्यों के साथ व्यायाम और शस्त्रविद्या सीखा करते थे और पौरुष के कर्तव्य दिखाते थे। इसके आगे वह स्थान आता है जहां से बुद्धसत्व ने अपना घोड़ा और रथ वापिस किया था। यहां पर ही उन्होंने वृद्ध

बीमार और मृतक पुरुषों और श्रवण को देखा था जिनको देख कर उनके हृदय में वैराग्य उत्पन्न हुआ था। इसके बाद ५०० ली की दूरी पर पूर्व में नगर **राम ग्राम** आता है। यह भी अब उजाड़ है। उसके पासही एक स्तूप है जिसे इस देश के राजा ने तथागत के निर्वाण काल के बाद उनकी अस्थियों पर बनवाया था। यह स्तूप सुसज्जित है। इसमें से सदा प्रकाश निकालता रहता है। इसके पासही एक नाग सरोवर है। इसमें से एक नाग निकलकर रूप बदला करता है। कभी २ वह मनुष्य के रूप में इस स्तूप की परिक्रमा किया करता है। इस स्तूप के आसपास जंगली हाथी भी घूमते और परीक्रमा करते हैं। कभी अपनी सूंड़ में फूल दबा कर लाते और मीनार पर चढ़ाते हैं और कभी सूंड़ में पानी भर के लाते और यहां चढ़ाते हैं। एक बार एक भिक्षु ने लोगों को धर्म उपदेश देते समय इसका उल्लेख किया था कि जंगली जानवर तो बुद्धदेव की प्रतिष्ठा करते हैं। परन्तु शोक कि मनुष्य जो बौद्धधर्म के अनुयायी हैं, वे यहां कुछ नहीं करते। वह भिक्षु यहां रह गया। उसने एक भवन, बनवाया जमीन साफ की और एक बाग लगाया। लोगों को जब उसका उद्देश मालूम हुआ तब सबने उसे सहायता दी। यहां उसने एक संघाराम और कई मन्दिर बनवाये।

यहां से आगे बढ़ कर सौ ली की दूरी पर एक और स्तूप मिलता है। इसे महाराज अशोक ने बनवाया था। इसी स्थान पर पहुंच कर बुद्धदेव ने अपने आभूषण और कपड़े उतारे थें और उन्हें चन्डक को दिया था। जहां उन्होंने अपने बाल कटवाये थे—वहां एक मीनार स्मारक रूप बनी हुई है। इस जंगल से रवाना होकर यात्री **कुश नगर** पहुंचे। अब यह देश उजाड़ है। परन्तु उसकी राजधानी में राजा अशोक का बनवाया हुआ एक स्तूप है। इसी स्थान पर **चन्द** का मकान था। इसके पास एक कुंआ है। जो पुजादिक के लिये जलकी आवश्यकता पूरी करने को खुदवाया गया था। उस का जल मधुर और शीतल है। कुछ मील की दूरी पर अजितवती नदी आती है, जिसके पास ही शाल वृक्षों का एक कुंज है। इस के सब वृक्ष ऊंचाई में बराबर हैं। यहां भगवान बुद्धदेव ने निर्वाण प्राप्त किया था। इस कुंज के पासही एक विहार में बुद्धदेव की निर्वाण

कौल की मूर्ति रखी हुई है। मूर्ति का मुख उत्तर की ओर है और ऐसा मालूम होता हैं कि वह सो रही है। इस विहार के पासही दो सौ फीट ऊंचा एक स्तूप है। इसे महराज अशोक ने बनवाया था। इस के पासही एक स्तंभ पर बुद्धदेव के निर्वाण काल का वर्णन अंकित है परन्तु निश्चित तिथि उस में नहीं दी गई है।

श्री बुद्धदेव ८० वर्ष तक जीवत रहे। उनके निर्वाण की तिथि के विषय में बहुत से मत हैं। कोई वैशाख की पूर्णिमा को उनकी निर्वाण तिथि मानता है। सरवस्तवादिन कार्तिक की पूर्णिमा को निर्वाण तिथि मानते हैं। कोई कहते हैं कि निर्वाण काल को १२ सौ वर्ष हो गये। किन्हीं का कथन है कि १९ सौ वर्ष बीत गये। कोई कहते हैं अभी निर्वाण काल को नौसौ वर्ष से कुछ अधिक हुए हैं। इस स्थान के पासही कुछ मीनारें हैं। वे उस स्थान पर बनाई गई हैं जहां पर स्वर्णमयी कफनी पहनकर बुद्धदेव ने अपनी माता को उपदेश दिया था।

यहां पर ही उन्होंने आनन्द से प्रश्न किये थे। यहां ही आठ राजाओं ने उनकी अस्थियों को आपस में बांटा था। यहां से आगे चलकर आगे एक जंगल आता है, जिसके बाद काशीनगरी मिलती है। उस के पश्चिम दिशा में गंगा बहती है। यह बड़ा प्रसिद्ध और वैभव पूर्ण नगर है। इस नगर में बत्तीस संघाराम हैं। इन में दो हजार पुजारी रहते हैं। ये बौद्ध धर्म का पालन करते हैं। इस नगर से आगे एक बड़ा संघाराम है, जिसकी मीनारें आकाश से बातें करती हैं। उस में पन्द्रह सौ पुजारी रहते हैं। इस संघाराम के भीतर एक कमरे में बुद्धदेव की मूर्ति है। वह पीतल की बनी हुई है। ऊंचाई में वह मनुष्य के बराबर है। मूर्ति धर्मचक्र को घुमा रही है। इस के पासही एक मीनार है जिसे महाराज अशोक ने उस स्थान पर बनवाया था, जहां बुद्धदेव ने पहिली बार लोगों को उपदेश दिया था। इस के पश्चिम कोण पर एक ओर स्तूप है, जो उस स्थान पर बनाया गया है जहां पूर्व काल में बुद्ध-सत्व प्रभापाल उत्पन्न हुऐ थे। इसी के पास वह स्थान है जहां पर प्राचीन काल में बुद्ध आये थे। वहां एक ५०० फीट ऊंची मीनार बनी हुई है। इसके निकट ही एक सरोवर है जहां तथागत स्नान किया करते

थे। इसी सरोवर के पास एक संघाराम और एक स्तूप है। कहते हैं कि ये दोनों उस स्थान पर बनाये गये हैं जहां पूर्व काल में बुद्ध सत्व हाथी के रूप में प्रकट हुए थे। उन के छे दांत थे। एक दिन एक शिकारी उसे मारने आया उसने अपने दांत उसको भेट कर दिये। इस के पास ही वह स्थान है जहां बुद्धदेव पूर्व जन्म में पक्षी के रूप में प्रकट हुए थे। यहां पर ही उन्होंने एक बन्दर और एक श्वेत हाथी से कुछ प्रतिज्ञा की थी। इसके पास ही वह स्थान है जहां बुद्धसत्व मृगराज के रूप में प्रकट हुए थे। यहां ही उन्होंने कौंदिन्य और उसके ५ साथियों को अपना अनुयायी बनाया था। इस स्थान से गंगा के तट पर चलते हुए २०० ली की दूरी पर उत्तर पश्चिम कोण में गंगा को पार करने के बाद वैशाली देश मिलता है। यह बड़ा सुहावना देश है। यहां प्रकृति की शोभा अपार है। परन्तु यहां की जन संख्या कम है। नगर के पास ही एक संघाराम है जो उस स्थान पर बना हुआ है जहां बुद्ध सत्व ने लोगों को विमलकीर्तिशास्त्र सुनाया था। इस के थोड़ी ही दूरी पर वह स्थान है जहां विमल कीर्ति ने धर्मोपदेश दिया था। इस के पास ही वह भवन है जहां ऋषि रत्नाकर और देवी अमरपारिका रहते थे। इसके पास ही वह स्थन उत्तर दिशा में वर्तमान है जहां निर्वाण के पहिले बुद्धदेव गये थे। उस समय असंख्य देव और मनुष्य उनके साथ थे। पश्चिम में वह स्थान है जहां खड़े होकर अन्त समय में बुद्धदेव ने वैशाली नगर की ओर देखा था। उस के आगे वह उपवन है जिसे देवी अमरपारिका ने बुद्धदेव को दान दिया था। उसके आगे वह स्थान है जहां मार राजा की प्रार्थना पर बुद्धदेव ने निर्वाण प्राप्त करने का निश्चय किया था। इस के बाद पश्चिम में चल कर और गंगा पार करके मगध देश मिलता है। यहां के मनुष्य विद्वान सुशील और सत्यप्रिय होते हैं। यहां ५० संघाराम हैं जिन में दस हजार पुजारी रहते हैं। इस देश के दक्षिण में एक प्राचीन नगर था, इस के खंडरात अब तक वर्तमान हैं। इस का प्राचीन नाम कुसुम पुर था। यहां राजप्रसाद में बहुत से फूल होते थे। बाद में वही पाटली पुत्र के नाम से विख्यात हुआ। यह नाम पाटली नामक वृक्ष के कारण पड़ा।

बुद्धदेव के निर्वाण प्राप्त करने के एक सौ वर्ष बाद महाराज अशोक हुए। उन्होंने अपनी राजधानी राजग्रही से हटा कर **पाटली** पुत्र में बनाया। अब तो यह नगर उजाड़ हो गया है। नगर का परकोटा खंडहर और मंदिर ही शेष रह गये हैं। इस नगर के उत्तर में गंगा तट पर एक छोटासा नगर है, जिसमें एक हजार की बस्ती है। नगर के पास ही वह कारागार (संसारिक नर्क) है जिसे महाराज अशोक ने अपराधियों के लिये बनवाया था। इस नगर में बुद्धदेव सात दिन तक रहे। इस के दक्षिण में एक स्तूप है जिसे महाराज अशोक ने बनवाया था। पास के एक विहार में वह पत्थर की शिला है जिस पर तथागत का पद चिन्ह वर्तमान है। वह जिन्ह एक फीट आठ इंच लम्बा और छ इंच चौड़ा है। इस पत्थर पर बुद्धदेव ने उस समय अपने पद चिन्ह छोड़े थे जब कि वें वैशाली से वापस आ रहे थे। उसी समय[१] उन्होंने आनन्द से कहा था कि यह आखरी वक्त है जब कि मैं वज्रासन, राजग्रहि और उनके निवासियों को देखता हूं।

इस संघाराम के दक्षिण में एक स्थंभ है जो ३० फीट ऊंचा होगा। इस पर महाराज अशोक के दान और कृत्यों का वर्णन है। इसके दक्षिण पूर्व दिशा में कुक्कुटाराम अशोकाराम संघाराम के खडरान हैं। इसे महाराज अशोक ने बनवाया था। उसमें भी एक हजार पुजारी रहते हैं। राजा की ओर से उनकी जीविका का प्रबंध किया जाता है हुएनसंग ने सब क्षेत्रों का तीर्थ किया। यहां से आगे चलकर हुएनसंग तिलादक के विहार में पहुंचा। वहां बौद्धधर्म के तीनों रास्तों के ज्ञाता पुजारी रहते हैं। उन्होंने उस का स्वागत किया। इसके आगे चलकर बौद्ध वृक्ष मिलता है जो एक पक्की दीवाल में चुना हुआ है। इस स्थान पर बहुत से तीर्थ स्मारक बने हुए हैं, मुख्यद्वार नैरंजन नदी के तट पर स्थित है। विहार के बीच में एक हीरेका सिंहासन है जो भद्रकल्प में बनाया गया था ~~एक हीरे~~ यदि यह सिंहासन न होता तो वज्रसमाधि में स्थित मनुष्य

---

१. यह हीरे का तख्त था जिस पर बैठ कर बुद्धदेव ने पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया था।

का भार प्रधान सम्हाल सकी। जो मनुष्य मार को वश में करना चाहता है और पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने का अभिलाषी है वह इस सिंहासन पर बैठता है। लोगों का विश्वास है कि संसार चाहे हिलजावे परन्तु यह सिंहासन अपना स्थान नहीं छोड़ेगा। दो तीन सौ वर्ष पाप के अधिक होने के कारण लोग इस वज्रासन को न देख सके। हुएनसंग इस स्थान पर नौ दिन तक रहा। दसवें दिन वह उस मंदिर के दर्शन के लिये गया जहां बौद्धधर्म का प्रसिद्ध विद्वान मौद्गलायन उत्पन्न हुआ था। यह नालिन्द का विख्यात मंदिर है।

इस स्थान पर बहुत से पुजारियों ने उस का सत्कार किया और गाते बजाते बड़ी धूमधाम से उसे मंदिर में ले गये। इस के बाद चारों ओर यह बात प्रसिद्ध करदी गई कि हुएनसंग अमुक संघाराम में ठहरा हुआ है। उसको किसी प्रकार का कष्ट न होने पावे। पुजारियों ने बीस नवयुवक उसकी सेवा में दिये। तत्पश्चात वह बौद्धधर्म के प्रसिद्ध विद्वान शीलभद्र के दर्शन को गया। यहां वह सर्वपूज्य माना जाता था। उसके दर्शन किये। शीलभद्र ने उसे अपने पास बिठाया और उससे पूछा कि आप किस देश से आये हैं। हुएनसंग ने उत्तर दिया कि मैं चीनदेश से आया हूं और मेरी इच्छा है कि आप से योगशास्त्र के सिद्धान्तों को पढ़ूं और समझूं।

यह सुनकर शीलभद्र ने अपने एक भतीजे और शिष्य बुधभद्र को बुलाया। उनसे कहा कि तुम इस यात्री को मेरी बीमारी की कथा सुना दो जिससे मैं तीन वर्ष पूर्व पीड़ित था। यह सुनते ही बुदभद्र रोने लगा। फिर उसने अपने आतिथि यात्री से शीलभद्र की बीमारी का साविस्तर हाल सुनाया। उसने कहा इन्हें व्यथा जनक उदर शूल की पीड़ा थी। उससे हाथ पैर सब ऐठने लगते थे और शरीर में बड़ा दर्द होता था। परन्तु यह दर्द एकाएक बन्द हो जाता था। यह दशा बीस वर्ष तक रही। परन्तु तीन वर्ष से दर्द बढ़ गया है, यहां तक कि शीलभद्र आत्मघात करने को सोचने लगा। एक रात्रि को स्वप्न में उसने तीन पुरुष देखे जिनमें एक का रंग स्वर्णमय था दूसरे का बिल्लोरी रंग था

और तीसरे का बिजली के समान श्वेत। वे देवता मालूम होते थे। उन्होंने शीलभद्र से कहा क्या तुम शरीर त्यागने को तत्पर हो ?। यह तो ठीक नहीं है। धर्म की आज्ञा है कि शरीर तो कष्ट भोगने के लिये ही बना है। शरीर से न तो द्वेष ही करना चाहिये न उसका। त्याग तुम पूर्व जन्म में एक देश के राजा थे। तुमने जीवों को बड़ा कष्ट दिया था। यह उन सब कर्मों का बदला है। इस लिये आत्मघात की अपेक्षा अपने पूर्व जन्म के पापों को देखो और उनको दूर करने का यत्न करो, पश्चाताप करो। अपने कष्ट को शांति और धैर्य्य के साथ सहन करो। सूत्रों और शास्त्रों की शिक्षा निरन्तर देते रहो इस से तुम्हारा दुख दूर होगा। परन्तु यदि इसके विपरीति तुमने आत्मघात किया तो तुम्हारा कष्ट कभी कम न होगा। शीलभद्र को मालूम हुआ। कि य तो अवलोकतेश्वर बुद्धसत्व, मैत्रेय बुद्धसत्व और मंजुश्री बुद्धसत्व है। और उसके आत्मघात करने के भये से, सब मिल कर उपदेश देने आये हैं। शीलभद्र ने प्रार्थना की कि आप की आज्ञा शिरोधार्य है। मृत्यु के बाद में मेरा जन्म आप के स्वर्ग में हो। उसकी यह प्रार्थना स्वीकृत हुई। जाते हुए उन्होंने कहा कि तुम हमारी बात पर विश्वास करके धर्म प्रचार करो और योग शास्त्र की शिक्षा को विस्तृत करो। जो लोग इस ज्ञानरत्न से अनभिज्ञ है उनको इस का दान दो। इसी से तुम्हारा क्लेश और दुख दूर होगा। देखो चीन देश से एक पुजारी आ रहा है जो तुम से योगशास्त्र सीखना चाहता है। उसे अच्छी तरह से शिक्षा देना।

यह सुन कर शीलभद्र ने अपना शशि नवा दिया और कहा कि मैं आप लोगों के आदेश का पालन करूंगा। इस के बाद ही वे तीनों देवता लोप हो गये। उसी समय से शीलभद्र के क्लेश कम होने लगे। अब उसे किसी प्रकार का कष्ट नहीं है।

सब को इस बात पर आश्चर्य्य हुआ। हुएनसंग भी दंग रह गया। उसने शीलभद्र के प्रति सहानुभूति प्रकट की और उससे योगशास्त्र पठन की प्रार्थना की।

शीलभद्र ने पूछा कि तुम कितने दिनों से यात्रा में हो। हुएनसंग

ने उत्तर दिया कि तीन वर्ष से। स्वप्न की सत्यता को देख हुएनसंग को शीलभद्र ने अपना शिष्य बना लिया। तत्पश्चात हुएनसंग बालादित्य राजा के विश्वविद्यालय में चला गया। यहां बुद्धभद्र रहता था। वह सात दिन तक उसका अतिथि रहा। बाद में वह धर्मपाल बुद्धसत्व के संघाराम के उत्तर में एक भवन में जाकर ठहर गया। यहां उसकी आवश्यकताओं का प्रबंध अच्छी तरह से करा दिया गया। उसके पास एक ब्राह्मण और एक उपासक सदा रहते थे और एक हाथी भी उसे दिया गया था। नोट—उसके भोजनादि के लिये जो पदार्थ दिये जाते थे उसकी विस्तृत सूची मूलग्रंथ में दी है। उसमें एकप्रकार के चावल का वर्णन है जो अत्यंत सुगंधित होता था और राजा व प्रसिद्ध सन्यासियों को दिया जाता था। इस प्रकार का चावल, हुएनसंग लिखता है, केवल मगधदेश में ही होता था।

अध्याय छयालीसवां

नालिन्द--विश्वविद्यालय

नालिन्द के विश्वविद्यालय में एक साधु है जो सैकड़ों पुजारियों का सत्कार करता है। वहां हर देश के साधु और विद्यार्थी वर्तमान हैं। उस संघाराम के दक्षिण में अमृत के कुंज में एक सरोवर है। इसके अन्दर एक नाग रहता है। उसी का नाम नालिन्द है। एक कथा और प्रसिद्ध है। किसी समय तथागत बुद्धसत्व के रूप में एक देश का राजा था। तब उसने इस स्थान पर अपनी राजधानी बनायी थी। वह अनाथ और निर्धनों को सब कुछ दे डालता था। यह उसी का बाग है। बुद्धदेव को यह बाग व्यपारियों ने दान दिया था। इसे उन्होंने पांच लाख मुहरों में खरीदा था। इस स्थान पर बुद्धदेव ने तीन मास तक धर्म की शिक्षा दी थी। उन व्यपारियों ने इसका शुभ फल पाया। बुद्धदेव के निर्वाण के बाद इस देश

के वृद्ध राजा शक्रादित्य ने धर्म प्रेम की उमंग में एक संघाराम बनवा दिया। उसकी मृत्यु के बाद उसका बेटा बुद्धगुप्त गद्दी पर बैठा। उसने भी अपने बाप का अनुकरण किया और एक संघाराम बनवाया। तत्पश्चात, तथागत राजा और उसके उत्तराधिकारी बालादित्य ने यह देखकर कि दूर २ के यात्री यहां आते हैं इस स्थान की बहुत कुछ वृद्धि की और वहां संघाराम बनवाये। बालादित्य स्वयं एकांत सेवन करने लगा। राज पाट त्याग कर वह साधु होगया।

बालादित्य के बाद उसका लड़का वज्रराज गद्दी पर बैठा। उसने उत्तर में एक संघाराम बनवाया। ये सब संघाराम एक परकोटे से घिरे हुऐ हैं। संघारामों के बीच में जगत प्रसिद्ध **नालिन्द का विश्वविद्यालय** है जिसके आसपास बड़े २ आठ कमरे हैं। संघाराम में विशाल स्थम्भ हैं। यहां गहरे तालाब हैं जिनमें सुन्दर कमल खिले रहते हैं। यहां प्रायः दस हजार पुजारी है। संसार भर का ज्ञान यहां प्राप्त होता है। यहां १८ पंथों के बौद्धों का साक्षात हो सक्ता है। यहां पर वेद, वैद्यक, चिकित्सा, सांख्य आदि शास्त्रों की भी शिक्षा दी जाती है। इनमें एक हजार अध्यापक ऐसे हैं जो सूत्रों और शास्त्रों को भली भाँति समझ सक्ते हैं। पांच सौ उनसे भी ज्यादा विद्वान हैं। यहां एक से एक बढ़कर प्रचुर विद्वान मिलते हैं। संसार भर की विद्या का यह केन्द्र है। शीलभद्र सब का गुरू है। सब उसकी प्रतिष्ठा करते हैं। प्रति दिन भिन्न २ विषयों पर प्रायः एक सौ व्याख्यान होते हैं। और उनमें निरन्तर लोग उपस्थित रहते हैं। इस स्थान पर जितने पुजारी रहते हैं, वे सब विद्वान और बहु शास्त्रों के ज्ञाता हैं। सात सौ वर्ष हुए इस विश्वविद्यालय की नीव डाली गई थी। आजतक एक भी ऐसी घटना नहीं हुई जिससे इस विश्वविद्यालय के उद्देश की हानि हुई हो और उसे लज्जित होना पड़ा हो।

इस देश का राजा पुजारियों की बड़ी इज्जत करता है। इसने उनके खर्च के लिये एक सौ गांव की आमदनी दान कर दी है। दो सौ नागरिकों से इनके भोजन के लिये नित्य दूध चांवल आदि आता है। कपड़े, भोजन या औषधि की यहां किसी को कमी नहीं रहती। नालिन्द में कुछ समय ठहर कर हुएनसंग राजगृही चला गया, ताकि वह वहां के प्राचीन पवित्र

स्थानों का तीर्थ करे । राजगृही का असली नाम कुशागरपुर है । यह मगधं देश के बीचों बीच स्थित है । प्राचीन काल में इस देश में बहुत से अच्छे राजा हो चुके हैं । इस देश में कुश नामक सुगंधित घास होती है । इस लिये उसका नाम कुशागर पड़ा । इसके चारों ओर पहाड़ हैं । केवल पश्चिम की ओर एक रास्ता पहाड़ काटकर नगर में आने के लिये बनाया गया है । राजप्रसाद के उत्तर की तरफ एक संघाराम है जहां देवदत्त ने अजात शत्रुको बहकाकर श्री बुद्धदेव के ऊपर मस्त हाथी छुड़वाया था । उसके उत्तर पूर्व में एक संघाराम है जहां सारिपुत्र ने अश्वजित भिक्षु से बौद्धधर्म की शिक्षा ग्रहण की थी । इसके उत्तर में थोड़ी दूर पर एक खाई है । यहां पर श्रीगुप्त ने बुद्धदेव को विष मिश्रित भोजन देकर मारडालने का प्रयत्न किया था । इस स्थान के ईशान में एक संघाराम है जिसे वैद्य **जीवक** ने बनवाया था । यहां बुद्धदेव शिक्षा दिया करते थे । इसके पास ही स्वयं वैद्य के रहने का एक प्राचीन भवन है । कुशागार से आगे बढ़कर कुछ मील की दूरी पर ईशान में वह पहाड़ है जिसे ग्रिध्रकूट कहते है । यह पहाड़ों की एक श्रेणी बद्ध पंक्ति है । इसकी बीच वाली पहाड़ी मीनार के समान ऊंची उठी हुई है । यहां नाना प्रकार की बनस्पति मिलती हैं । बुद्धदेव अपने जीवित काल में बहुधा यहां रहते थे । यहीं पर उन्होंने सद्धर्मपुण्डरीक और महाप्रज्ञासूत्रों का उपदेश दिया था । इस स्थान पर एक मील की दूरी पर बासों का एक बाग है जिसके अन्दर एक पक्का भवन बना हुआ है । इस भवन में बुद्धदेव कुछ दिन रहे थे । यहां पर ही उन्होंने मृत्यु के विषय में बहुत से सिद्धांत व उपदेश प्रकट किये थे । यहां ही उन्होंने विनय के नियमों को सुसंस्कृत किया था । इस बाग का स्वामी कारन्द नामक एक मनुष्य था । उसने पहिले यह बाग नास्तिकों को दान दिया था । बाद में जब उसने बुद्धदेव के उपदेश सुने तब उसे अपने किये पर शोक हुआ । वह यह चाहता था कि यह बाग बुद्धदेव को दान दिया जाता । प्रथ्वी भी यह बात ताड़गई । वहां कुछ विचित्र व भयंकर उत्पात हुये । नास्तिक लोग डर गये । उस समय एक आवाज आई कि इस प्रथ्वी का स्वामी बुद्धदेव को यह जमीन दान देना चाहता है । तुम लोग यहां से चले जावो । इस बात को सुनकर नास्तिक लोग डर गये । और वहां से

चुपके से चले गये। इसी समय उसके स्वामी ने वहां एक बाग लगाया और एक भवन बनाया। सब कुछ तैय्यार होने पर उसने बुद्धदेव से वहां आने की प्रार्थना की। बुद्धदेव ने आकर उस दान को स्वीकार किया। इस बाग के पूर्व में एक स्तूप है जिसे राजा अजातशत्रु ने बनवाया था। तथागत के निर्वाण के बाद उनके शरीर की राख व हड्डी को राजाओं ने बाट लिया था। जो भाग अजातशत्रु को मिला था उस पर उसने एक संघाराम और एक स्तम्भ बनवाया। महाराज अशोक ने इस स्तूप को खुलवाया और यहां की राख व हड्डियों को निकालकर उसने उन पर बहुतसे स्तूप बनवाये। बाँस वाले बाग के नैऋत्य कोण में कुछ मील की दूरी पर एक पहाड़ के तट पर एक और बाग है। इसके भीतर भी एक पक्का भवन* बना है। यह वही प्रसिद्ध और पवित्र उपवन है जहां बुद्धदेव के निर्वाण के बाद ही **महाकाश्यप** और उनके ९९९ शिष्यों ने बौद्धधर्म के सब ग्रन्थों को एकत्रित किया था।

जब धर्म ग्रन्थों को एकत्र कर लिया गया तब काश्यप ने आनन्द से कहा कि अभी तक तुम में मनुष्यों की कमजोरियां वर्तमान हैं। इस लिये तुम यहां से चले जाओ। तुम्हारे रहने से यह स्थान अपवित्र होता है। आनन्द बहुत लज्जित हुआ और वहां से चला गया। परन्तु एक ही रात्रि के साधन में वह पूर्ण अर्हत बनगया। प्रातः काल वह विहार के द्वार पर गया और प्रणाम किया। काश्यपने उससे पूछा कि क्या तुम पवित्र होगये। उसने उत्तर दिया हां अब मैं अर्हत होगया हूं। यह सुन कर काश्यप ने उसे मंदिर में जाने की आज्ञा देदी। और उससे कहा कि तुम्हारे हित के लिये ही मैने तुम्हें परिषद से बाहर रखा था। तुम बुरा न मानना। तत्पश्चात काश्यपने कहा कि बुद्धदेव के तुम सब से निकट मित्र साथी व शिष्य थे। आवो आज सब को सूत्रपितक सुनाओ। यह सुनकर आनन्द ने उस पर्वत को नमस्कार किया जहां बुद्धदेव का निर्वाण हुआ था। तत्पश्चात उसने सूत्र पढ़ा। इसके बाद काश्यपने उपाली से विनयपितक पढ़ने को कहा। उपाली ने आज्ञा का पालन किया। काश्यप ने स्वयं अभिधर्म

*यह श्रुत पत्र गुफा है।

पितक पढ़ा । अंत में त्रिपितक की कापियां ताड़के पत्रों पर लिखवाकर दूर २ भेजी गई। काश्यप के सभापतित्व के कारण इस सभा का नाम स्थावीर सभा हुआ। इस संघाराम से कुछ मलि की दूरी पर पश्चिम में एक और स्तूप है जिसे महाराज अशोक ने बनवाया था। यहां पर बौद्धधर्म की **महासभा** [महासंघिका] एकत्रित हुई थी। यहां पर बुद्धदेव के वे शिष्य एकत्र हुये थे जिन्हें काश्यप ने अपनी सभा में नहीं बुलाया था। उन्होंने आपुस में कहा कि तथागत हमें एक समान चाहते थे। यद्यपि उनके शिष्यों ने हमको अपने में शामिल नहीं किया किन्तु हमको चाहिये कि श्रीबुद्धदेव के सत्मार्ग का पालन और प्रचार करें। उन्होंने पांच * धर्म ग्रन्थों को इकट्ठा किया। इनमें धारणी पिताक नामकग्रन्थ भी था। इससभा में विद्वान और साधारण दोनों प्रकार के मनुष्य एकत्र थे। इस लिये इसका नाम **महासंघिका** हुआ। इस संघाराम से चार ली की दूरी पर ईशान कोण में **राजग्रही** नगरी है। यद्यपि इसका नगर कोट नष्ट कर दिया गया है परन्तु नगर के भीतर अभी भी अच्छे २ भवन बने हुये हैं। प्राचीन काल में जब कि कुशागर में **बिम्बसार** राज्य करता था इस नगर की घनी आबदी थी। नगर में कई बार आग लगी। राजा ने आज्ञा दी कि भविष्य में जिसके मकान में आग लगेगी वह नगर से निकाल कर (स्मशान में) जंगल में रखा जावेगा। इस घोषणा के कुछ दिनबाद ही, राजा के महल में आग लगी। राजा ने विचारा कि यदि वह अपनी आज्ञा का पालन नहीं करता तो प्रजाभी उसका पालन नहीं करेगी। इस लिये वह राज्य त्यागकर (स्मशान) जंगल में चला गया।

जब वैशाली के राजा को यह समाचार मिला तब उसने बिम्बसार को कैद करना चाहा। परंतु राजग्रही निवासियों को भी इस का समाचार मिल गया। उन्हों ने अपने राजा को समाचार दिया और नगर के आसपास घेरा डाल दिया। क्योंकि प्रथम यह राजा का निवास स्थान हुआ इसलिये इस का नाम **राजग्रही** पड़ा। राजा बिम्बसार की मृत्यु के बाद उसके

---

* पांच पितक के नाम सूत्र अभिधर्म विनय विभिन्न और धारणी पितक है।

पुत्र अजातशत्रु ने इसे अपनी राजधानी बनाया। यहां महाराज अशोक के समय तक मगध की राजधानी रही। महाराज अशोक ने पाटलीपुत्र को अपनी राजधानी बनाया और पुरानी राजधानी ब्राह्मणों को अर्पण कर दिया। अब इस नगर में एक सहस्र ब्राह्मणों के घर है। इस नगर के अन्दर नैऋत्य दिशा में एक स्तूप है। इसके पासही ज्योतिष्क नामक एक गृहस्थ रहता था। निकट ही वह स्थान है जहां बुद्धदेव ने राहुल को अपना शिष्य बनाया था। नालिन्द के संघाराम के उत्तर पश्चिम कोण में एक बड़ा विहार है। यह २०० फीट ऊंचा है। इसे बालादित्य ने बनवाया था। इस के भीतर श्री बुद्धदेव की वैसीही मूर्ति है जैसी कि बौद्धि वृक्ष के नीचे है। इसके ईशान कोण में एक स्तूप है। यहां पर बुद्धदेव ने सात दिन तक धर्म उपदेश किया था। आगे वह स्थान है जहां पूर्व काल में चारों बुद्ध बैठा करते थे। इसके आगे वह विहार है जिसपर स्वर्ण जटित छत्र चढ़ा हुआ है। इसे शिलादित्य ने बनवाया था। यह सौ फीट से अधिक ऊंचा है। इससे २०० कदम की दूरी पर बुद्धदेव की एक तांबे की मूर्ति है। यह ८० फीट ऊंची है। इसे पूर्णवर्मा नामक राजा ने बनवाया था।

इस मूर्ति के पूर्व में कुछ मीलों की दूरी पर उस स्थान पर एक संघाराम है जहाँ राजा बिम्बसार बहुत से लोगों को साथ लेकर बुद्धदेव के दर्शन के लिये गया था। इस संघाराम से कुछ मील पूर्व में इन्द्रशीलगुह पर्वत है। यहां एक संघाराम है। इसके सामने पूर्व की ओर पर्वत पर **हंसस्तूप** है। यहां पहले हीनयान मत की शिक्षा दी जाती थी। परन्तु अब महायान पन्थ की शिक्षा दी जाती है। किसी समय हंस के रूप में बुद्धसत्व ने यहां धर्मोपदेश दिया था।

हुएनसंग उन पवित्र-स्थानों का तीर्थ करने के बाद नालिंद वापिस आया। **यहां उसने हजारों लोगों के सामने शीलभद्र आचार्य से योग शास्त्र को पढ़ा।** जिस दिन योग शास्त्र का पढ़ना समाप्त हुआ उस दिन संघाराम के बाहर एक ब्राह्मण पहले खूब रोया बाद में खूब हँसतेरहा। लोगों ने उससे इसका कारण पूछा। उसने कहा कि मैं पूर्व देश का रहने वाला

हूं। एक दिन मैंने अविलोकितेश्वर से प्रार्थना की कि मुझे राजा बना दे। बुद्धसत्व ने दर्शन देकर कहा कि भविष्य में ऐसी प्रार्थना न करना। तू विद्वान शीलभद्र के पास जा। जब वह एक चीनी यात्री को योगशास्त्र की शिक्षा देवे तब तू बड़े ध्यान से उसे सुनना। उसके सुनने से तुझे वह ज्ञान प्राप्त होगा जिसके द्वारा तू बुद्धदेव के दर्शन कर सकेगा। इससे अधिक तू क्या चाहता है। राजा बनने से क्या लाभ। अब मैंने अपनी आखों से शीलभद्र को योग शास्त्र पढ़ाते देख लिया। चीनी यात्री को भी देखा। बुद्धसत्व की भविष्य वाणी सत्य हुई। यही मेरे रोने और हंसने का कारण है। यह सुनकर शीलभद्र और हुएनसंग ने उसे पन्द्रह महीने अपने पास रखा। वह योग शास्त्र की शिक्षा पाता रहा। शिक्षा प्राप्त करने के बाद एक ब्राह्मण के साथ वह शिलादित्य राजा के पास भेज दिया गया। यहां इसके निर्वाह के लिये तीन गांव की आमदनी दान दी गई। हुएनसंग ने यहां रहकर सवधर्म ग्रन्थों का अध्ययन किया। जो उसके सन्देह थे उन्हें भी वह दूर करता रहा। उसकी शंकाओं का भली भांति समाधान यहीं हुआ। बौद्धधर्म के ग्रन्थों को पढ़ने के बाद उसने ब्राह्मण धर्म के ग्रन्थों को पढ़ना आरम्भ किया और व्याकरण शास्त्र को भी पढ़ा। यह अत्यंत प्राचीन शास्त्र है। इसके मूल प्रवर्तक का कोई भी पता नहीं लगता। ब्राम्हणों के कथानुसार सृष्टि के आदि में ब्रम्हा ही व्याकरण शास्त्र के रचयिता हैं। वे उसे देवताओं को देते हैं। देवताओं से वह मृत्यु लोक में आता है। **वैवर्तकल्प** में इसकी श्लोक संख्या एक लाख थी। बाद में **वैवर्तसिद्धकल्प** में १० हजार रह गई। पानिणी ऋषी के हाथ से उसकी संख्या ८ हजार हुई। यह गांधार देश के शालातुर नगर के निवासी थे। यही पुस्तक भारतवर्ष में प्रचलित है। दक्षिण भारत के एक राजा ने एक ब्राह्मण द्वारा इसकी संख्या ढाई हजार श्लोकों में घटाई। यह पुस्तक बहुत प्रचलित है। सीमांत देश में इसका बहुत प्रचार है, परन्तु विद्वान लोग इसको प्रमाणणीय नहीं मानते। और कई पुस्तकें व्याकरण पर जिनके नाम है मंडक, उनादि, अष्ट धातु इत्यादि यहां प्रचलित हैं। हुएनसंग ने व्याकरण शास्त्र को खूब अच्छी तरह पढ़ा। वह लिखता है कि इसका नाम व्याकरणम् है। इसी की सहायता से उसने पुनः बौद्धधर्म के ग्रन्थों का अध्ययन किया। यहां से हुएनसंग

फिर **हिरन्य पर्वत** देश में गया। मार्ग में उसे कपोत संघाराम मिला इससे दो तीन मील के दूरी पर एक सुन्दर और रमणीय पहाड़ी है। उस पर पवित्र स्मारक बने हुए हैं। यहां सदा लोग तीर्थ करने के हेतु आते हैं। पर्वत के बीचों बीच विहार में बुद्धसत्व अविलोकितेश्वर की एक चन्दन की मूर्ति है। मूर्ति ध्यान मग्न और प्रतिभाशाली है। यहां बहुत से ऐसे लोग रहते हैं जो कई सप्ताह तक उपवास रहकर ध्यान और अराधना किया करते हैं। इस विधि से बहुतों ने बुद्धसत्व के दर्शन किये। इस लिये इन क्रियायों में विश्वास बढ़ता जाता है। यहां के पुजारियों ने मूर्ति के आसपास लकड़ी का एक घेरा बनादिया है ताकि वहां जाकर कोई मूर्ति को अपवित्र न करे। यह घेरा सात कदम के फासले पर बना है। इस कारण लोग दूरही से इसके दर्शन करते हैं। दूरहीं से लोग फूल चढ़ाते हैं। जिनके हार मूर्ति के गले में पड़ जाते है वे अपने को बड़ा भाग्य शाली मानते हैं।

हुएनसंग भी इस मूर्ति के दर्शन को गया। उसने प्रणाम कर ये प्रार्थनायें कीं कि (१) यदि मैं विद्या प्राप्त करने के बाद अपने देश में सुरक्षित पहुंच जाऊं तो मेरा पहिला हार मूर्ति के गले में लटक जावे। (२) यदि मृत्यु के पश्चात् मेरा जन्म तुषित स्वर्ग में हो, और मैं बुद्धसत्व **मैत्रेय** की सेवा कर सकूं तो मेरा दूसरा हार मूर्ति के बाहुओं में लटक जावे। (३) यदि मैं बुद्ध देव के किसी एक अंश को प्राप्त हो सक्ता हूं तो मेरा तीसरा हार मूर्ति के गले में पड़ जावे, क्योंकि धर्म ग्रंथों में लिखा है कि मनुष्यों में बुद्धतत्व प्राप्त करने के अंश वर्तमान हैं। यह कह कर उसने फूलों के हार फेंके। उसकी प्रार्थना सफल हुई। हुएनसंग आनन्द के मारे फूला न समाया। लोगों ने इसे एक चमत्कार समझा। वे समझे कि यह कोई माहात्मा है। इससे सब ने प्रार्थना की, कि तुम बुद्धतत्व के प्राप्त होने पर हम लोगों को भी बचाना और हमारे कल्याण के लिये यहां आना।

यहां से चल कर हुएनसंग **हिरन्य** देश में आया। यहां दस विहार हैं। इनमें चार हजार पुजारी रहते हैं। वे सब हीनयान सम्प्रदाय के अन्तर्गत सरवस्तवादिन पंथ के मानने वाले हैं। पूर्व काल में सीमांत देश का एक राजा इस देश के राजा को युद्ध में परास्त करके इस राजधानी

को पुजारियों के सुपुर्द कर गया था । उसके बनाये यहां दो संघाराम हैं। प्रत्येक में एक सहस्त्र पुजारी रहते हैं। यहां दो प्रसिद्ध विद्वान रहते हैं जो भाई २ हैं। इनके नाम तथागतगुप्त और क्षान्तिसिंह हैं। ये भी सरवस्तवादिन पंथ के अनुयायी हैं। यहां हुएनसंग एक वर्ष तक रहा और यहां ही उसने विभाषा-शास्त्र, न्यायानुसार शास्त्र और अन्य कई धर्म ग्रंथों का पाठ किया।

राजधानी के दक्षिण में एक स्तूप है। यहां तीन मास बुद्धदेव ने देवों और मनुष्यों के कल्याणार्थ शिक्षा दी थी। इसके पश्चिमीय सीमा पर गंगा के तट पर एक छोटीसी पहाड़ी है। यहां एक भवन बना हुआ है। अब यह खाली है। इस स्थान पर बुद्धदेव ने तीन मास एकांत सेवन किया था। यहां पर ही उन्होंने यक्ष वाकुल को परास्त किया था। इस पहाड़ी के दक्षिण पूर्व दिशा में एक ढलती पहाड़ी है। इसके नीचे एक बड़ी चट्टान है। इस पर बुद्धदेव के बैठने के चिन्ह अंकित हैं। ये चिन्ह एक इंच से कुछ अधिक गहरे, पांच फीट दो इंच लम्बे और चार फीट एक इंच चौड़े हैं। यहां एक गड्ढा है, जहां श्री बुद्धदेव का जलपात्र रखा रहता था।

इसके दक्षिण के देश बिलकुल उजाड़ हैं। चारों ओर जंगल है। इनमें विशाल हाथी पाये जाते हैं।

अध्याय सैंतालीसवां

चम्पा और कामरुप

हुएनसंग गंगा के दक्षिण तट से ३००० ली की यात्रा करता हुआ चम्पा पहुंचा। यहां दस संघाराम हैं। इनमें तीन सौ पुजारी रहते हैं। वे हीनयान पंथ के अनुयायी हैं। इस नगर के आसपास नगर परकोटा बना हुआ है। उसके आसपास एक गहरी खाई है। इस नगर से कुछ योजन की दूरी पर एक घना जंगल है। यहां काले चीते, तेंदुये; गेंडे और

हाथी बहुत होते हैं। इस लिये चम्पा और हिरण्य राज्य में हाथियों की एक बड़ी सेना है।

चम्पा से चलकर और ४०० ली की यात्रा करके हुएनसंग काजूगिर राज्य में आया। यहां ६-७ संघाराम हैं। इनमें प्रायः तीन सौ पुजारी रहते हैं। यहां का तीर्थ कर वह ६०० ली आगे बढ़ा। और पुन्ड्रवर्धन नगर में पहुंचा। यहां पर महायान और हीनयान दोनों ही सम्प्रदायों के भिक्षु निवास करते हैं। उनकी संख्या ३०० है। इसके आगे २० ली के फासले पर पोचिशा संघाराम है। इसकी मीनारें विशाल हैं। यहां ७०० पुजारी रहते हैं। इसे महाराज अशोक ने बनवाया था। यहां पर तथागत तीन मास तक ठहरे रहे। इसके पासही चारों बुद्धावतारों के प्राचीन स्मारक हैं। पासही के एक विहार में अवलोकितेश्वर बुद्धसत्व की मूर्ति रखी हुई है।

यहां से चल कर वह कर्णसुवर्ण देश में पहुंचा। यहां दस संघाराम हैं। इनमें ३०० पुजारी रहते हैं। वे सब हीनयान के अन्तर्गत समात्य सम्प्रदाय के अनुयायी हैं। इसके पासही देवदत्त मत के दो संघाराम हैं। यहां के भिक्षु मक्खन और दूध का उपयोग नहीं करते। यह उसकी शिक्षा के अनुसार है।

राजधानी के पास ही एक संघाराम है। इस का नाम रक्तवाती है।
यहां दक्षिण के एक यति ने बौद्धधर्म का प्रचार किया था।

यहां से दक्षिणपूर्व दिशा में समतात देश है। हुएनसंग यहां आया। यहां २० संघाराम हैं। उनमें तीन सौ पुजारी रहते हैं। वे स्थावीर सम्प्रदाय के अनुयायी हैं। यहां नास्तिक मत के मानने वाले भी बहुत हैं। नगर के बाहर एक स्तूप है जिसे महाराज अशोकने बनवाया था। यहां सात दिन तक श्री बुद्धदेव उपदेश देते रहे। एक संघाराम नज़दीक ही बनाया गया है जिस में बुद्धदेव की नीलम की एक मूर्ति रखी हुई है। उस मूर्ती से पांच रंग का प्रकाश निकलता है जिसे देखकर मनुष्य पर ध्यानामग्न दशा हो जाती है।

नदी के तट पर उत्तर पूर्व में श्रीक्षेत्र मिलता है। इसके दक्षिण

पूर्व में समुद्र की खाड़ी के पास पेगू नगर है। इसके पूर्व में द्वारपती महाचम्पा (सियाम) देश है। पश्चिम में यमराज देश है। इसका दूसरा नाम यवन देश है। यहां हुएनसंग स्वयं नहीं गया। लोगों से यहां के आचार विचार का हाल उसने मालूम किया।

हुएनसंग **ताम्रलिप्ति** में आया। यहां दस संघाराम हैं। इनमें एक हजार पुजारी रहते हैं। यहां महाराज अशोक का बनाया हुआ एक दो सौ फीट ऊंचा विशाल स्तूप है।

यहां उसे मालूम हुआ कि समुद्र के मध्य में सिंहल द्वीप स्थित है। वहां स्थावीर सम्प्रदाय के विद्वान रहते हैं। वे योगशास्त्र भी समझा सके हैं। सात सौ योजन की समुद्रयात्रा करने के बाद वह उस द्वीप में पहुंच सक्ता है। उसे दक्षिण के एक पुजारी ने बतलाया कि वह समुद्र के भयानक मार्ग से न जावे। दाक्षिण पूर्व तट से जो मार्ग दक्षिण भारत को जाता है वह सुगम है। केवल तीन दिन तक सेतुबन्ध से लंकागिरि तक जहाज में जाना होगा। और साथ २ उड़ीसा के प्रसिद्ध स्थानों को भी वह देख सकेगा। हुएनसंग को भी यह राय पसन्द आई। उसने उड़ीसा के मार्ग से जाने का निश्चय किया। और उड़ीसा पहुंचा। यहां प्रायः एक सौ संघाराम हैं। इनमें दस हजार यती निवास करते हैं। वे सब महायान पंथ के अनुयायी हैं। यहां अन्य २ धर्म के मानने वाले भी हैं। वे आसमानी शक्तियों में विश्वास और उनका पूजन करते हैं। यहां महाराज अशोक द्वारा बनाये हुये दस स्तूप हैं।

दक्षिण पूर्व तट पर समुद्र है। यहां एक **चरित्र** नामक स्थान है। यह व्यापार का केन्द्र है। व्यापारी यहां आकर ठहरते हैं। यहां से २००० ली की दूरी पर सिंहल द्वीप है। इतना फासला होने पर भी लंकागिरि के बौद्ध विहारों की मीनारों में जड़े हुये मणिरत्नों का प्रकाश यहां तक दिखाई देता है। वे तारागण के समान चमकते हैं।

अध्याय अड़तालीसवां

दाक्षिण यात्रा

उड़ीसा से चल कर हुएनसंग **गंजम** देश में आया। वहां से वह **कलिंग** गया। यहां पर भी बौद्धधर्म के १० संघाराम हैं। यहां पांच सौ पुजारी रहते हैं। वे स्थावीर सम्प्रदाय के अनुयायी हैं। प्राचीन काल में इस देश की जन संख्या बहुत ज्यादा थी। परन्तु एक ऋषि के श्राप से यह देश नष्ट हो गया। अधिकांश लोग मर गये। यहां से चल कर हुएनसंग **दाक्षिण कौशल** देश में पहुंचा। यहां का राजा क्षत्री है। वह बौद्धधर्म का अनुयायी है। और विद्वानों की प्रतिष्ठा करता है। इस देश में एक सौ संघाराम हैं जिन में प्रायः दस हजार पुजारी रहते हैं। नगर के पास ही एक प्राचीन संघाराम है। इसके पास ही एक स्तूप है। प्राचीन काल में तथागत यहां रहा करते थे। बाद में नागार्जुन बुद्धसत्व भी यही रहे। देश के राजा का नाम **सदवाह** था। वह नागार्जुन को बहुत चाहता था। उस समय इस नगर में **देवबुद्धसत्व** सिंहल से आये थे। नागार्जुन ने उनके पास एक थाली भिजवाई जिसमें पानी भरा हुआ था। देवबुद्धसत्व ने थाली को देख कर उसमें एक सुई डालदी और थाली वापिस कर दी। नागार्जुन यह जान कर बड़ा प्रसन्न हुआ उसने पानी इस लिये भेजा था कि मेरा चरित्र इतनाही निर्मल है। देवबुद्धसत्व ने सूई इसालिये डाली थी कि वह उस चरित्र के तह तक पहुंच सक्ता है। दोनों में वार्तालाप हुआ। और देवबुद्धसत्व ने नागार्जुन की श्रेष्ठता स्वीकार करली। यहां हुएनसंग एक मास रहा। यहां से चल कर वह **अंधूदेश** में पहुंचा। इस नगर के पास ही एक बड़ा संघाराम है। इसे अर्हत अचल ने बनवाया था। यहां से २० ली की दूरी पर एक पहाड़ी पर एक स्तंभ है। यहां बुद्धसत्व युवन जन ने हेतु विद्या शास्त्र निर्माण किया था। यहां से १००० ली आगे चल कर **धनकटक** देश आता है। इसके दोनों ओर पहाड़ से बनाये हुए दो संघाराम है। जिन्हें एक राजा ने बुद्धदेव के लिये बनवाया था। इनके नाम पूर्वशील और अवरशील है। यहां भी बहुत से विद्वान

रहते हैं। स्थान प्राकृतिक शोभा से पूर्ण हैं। कहीं सोता है तो कहीं हरियाली। कहीं जंगल है, कहीं पहाड़ी। पहिले दूर २ से साधु यहां आकर अभ्यास करते थे, परन्तु उनको यहां दुष्ट प्रेतात्माओं ने बहुत तंग किया। इस-लिये अब यह स्थान बिलकुल उजाड़ है। इसके दक्षिण में एक पहाड़ी है। यहां पर मैत्रेय बुद्धसत्व के दर्शन के लिये एक बहुशास्त्रों का ज्ञाता **भावविवेक** तप करता है। इस देश में हुएनसंग को दो पुजारी **सूर्य** और **सौभूति** मिले जो बहुत विद्वान थे। यहां हुएनसंग कई मास तक रहा। उसने महासंधिका पंथ के धर्म ग्रन्थ **मूल अभिधर्म शास्त्र** का अध्ययन किया। इससे निवृत होकर उसने तीर्थ स्थानों के दर्शन किये। **सूर्य और सौभूति** ने भी हुएनसंग से महायान संप्रदाय के ग्रंथ पढ़े। यहां से १००० ली चलकर हुएनसंग **चोल्या** नगर में पहुंचा। इसके आग्नेय दिशा में एक स्तूप है। यहां बुद्धदेव ने बहुत से चमत्कारिक कार्य किये थे और उपदेश दिये थे। इसके पश्चिम में एक और संघाराम है जहां देव बुद्धसत्व ने अर्हत **उत्तरा** के साथ शास्त्रार्थ किया था। यहां से रवाना होकर दक्षिण में कोई १५००-१६०० ली की दूरी पर एक देश है। जिसका नाम **द्राविड़** है। उसकी राजधानी **कांचीपुर** है। यहां पर धर्मपाल बुद्धसत्व उत्पन्न हुये थे। बौद्धधर्म का यह प्रसिद्ध विद्वान हुआ। इसने बहुत से ग्रंथ लिखे। जिनमें कुछ ग्रन्थों के नाम ये हैं:— शब्दविद्या संयुक्त शास्त्र (२५००० श्लोक) सतशास्त्र वैपुल्यम, विद्यामात्र सिद्धिशास्त्र, न्यायद्वार तर्क शास्त्र। कांचीपुर दक्षिण समुद्र के मुहाने पर स्थित है। सिंहलद्वीप यहां से केवल तीन दिन की सामुद्रिक यात्रा है। कांचीपुर में हुएनसंग की दो प्रसिद्ध पुजारियों से भेट हुई। वे सिंहलद्वीप के रहने वाले थे। वहां अकाल पड़ने और राजा की मृत्यु होने से वे ३०० पुजारियों के साथ जम्बूद्वीप में आरहे थे। उनके नाम बौधिमेघेश्वर और अभयाद्रष्टि थे। हुएनसंग ने उनसे सिंहलद्वीप के विद्वानों के विषय में पूछा। उन्होंने कहा हमारे देश में काल पड़ गया है। राजा मर गया है। वहां के सबसे श्रेष्ठ विद्वान हम हैं। हमसे जो चाहो पूछो। तब हुएनसंग ने उनसे योगशास्त्र पूछना आरम्भ किया। परन्तु वे शीलभद्र के समान इस शास्त्र को न समझा सके। इस देश के दक्षिण में और समुद्र के तट पर एक और देश है। इसका नाम **मलयागिर** है। इसके तट पर बड़ी २ चट्टानें और गहरे दरार

हैं। इस देश में श्वेत चन्दन के वृक्ष हैं। और नाना प्रकार के सुगन्धित वृक्ष यहां होते हैं। गर्मी के ऋतु में इनमें सांप लपटे रहते हैं। परन्तु सर्दी के कारण शीतकाल में वे अपने २ बिलों में जाछिपते हैं। यहां कपूर के भी वृक्ष हैं। वे महा सुगन्धित होते हैं। उनमें फल और फूल दोनों लगते हैं। जब इस वृक्ष को काटकर सुखा लिया जावे, तब सुगन्ध बढ़ जाती है। लकड़ी के अन्दर जो गूदा निकलता है उस से कपूर बनाते हैं। यहां से ३०० ली की दूरी पर **सिंहलद्वीप** है। यह बड़ा उपजाऊ देश है। आबादी भी घनी है। अनाज भी यहां बहुत होता है। यहां के निवासी काले और नाटे होते हैं। उनका स्वभाव जोशीला होता है। यहां पवित्रता बहुत कम है। यहां एक दन्तकथा प्रचलित है। दक्षिण के राजा के साथ, इस द्वीप की एक कन्या विवाही गई थी। जब उसे सुसराल को लेजा रहे थे तब मार्ग में एक सिंह मिला। सब लोग डरके मारे भाग गये और वह कन्या वहां छूट गई। सिंह उसे उठाकर लेगया, मारा नहीं। परन्तु उसको अपने यहां रखा। उस सिंह के संसर्ग से उस स्त्री के एक पुत्र और एक पुत्री हुई। वे मनुष्यों के समान थे। परन्तु स्वभाव उनका बड़ा क्रूर था। जब लड़का बड़ा हुआ तब तो उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। वह अपने को पाश्विक सन्तान कहलाने से संकोच करने लगा। एक दिन वह अकेले में अपनी मां और बहन को लेकर भाग गया। जब सिंह अपने स्थान पर आया और उसने अपनी स्त्री (!) पुत्र और पुत्री को न पाया तब तो वह महा क्रोधित हुआ। आगे बढ़कर उसने सब को मारना शुरू किया। जो उसके सामने आता उसे वह मार डालता था। गांव के गांव नष्ट होगये। राजाने यह घोषणा दी कि जो कोई इस सिंह को मारेगा उसे एक लाख मुहरें परितोषक में दी जावेंगी। यह समाचार पाकर सिंह-पुत्र ने अपनी माता से कहा कि मैं उसका सामना करने जाता हूं। मांने कहा यह तो अस्वाभाविक बात है। पशु होने पर भी वह तेरा बाप है। तू ऐसा न कर। परन्तु लड़के ने न माना। उसने कहा कि यदि मैं ऐसा न करूंगा तो चारों ओर अन्याय होगा। गांव के गांव नष्ट हो रहे हैं यदि राजा को मालूम होजावे कि मैं इस कार्य के योग्य था और ऐसा न किया तो वह मेरा वध कर डालेगा मुझे अवश्यही उस सिंह को मारडालना चाहिये। तत्पश्चात लड़का सिंह का सामना करने गया। सिंहने ज्योंही

अपने पुत्र को देखा प्रेम के मारे प्रफुल्लित होगया। लड़के ने एक कटार से उसका गला काट दिया परन्तु उसने चूं तक नहीं किया। शांति पूर्वक प्राण दे दिया। जब राजा को मालुम हुवा कि सिंह मारा गया तब तो वह बड़ा प्रसन्न हुआ परन्तु उसने उस लड़के से सिंह की असाधारण क्षमता का कारण पूछा। बहुत कुछ इन्कार करने के बाद उस लड़के ने सब वृतांत राजा से बतला दिया। राजा ने कहा ठकि है मैं तुम्हें परितोषक तो अवश्य दूंगा परन्तु तुमने ऐसा काम किया है जिस्के करने का साहस केवल पाश्विक सन्तान को ही हो सक्ता है। पिता के वध करने के अपराध में तुम मेरे देश से निकल जावो। राज कर्म चारियों ने आज्ञा का पालन किया। बहुत सा द्रव्य देकर उसे एक जहाज में बैठाकर समुद्र के बीचों बीच छोड़ दिया गया। कई दिन के बाद वायु के झकोरे खाता हुआ वह जहाज सिंहल द्वीप पहुंचा। वहां ही वह रहने लगा। बहुत से व्यापारी उसके पास आकर रहने लगे। उन्हें इसने मारडाला और उनकी स्त्रियों और बेटियों को अपनी स्त्री बनालिया। उनसे कई सन्तान हुई। वे बढ़ती गई उनमें एक से उस द्वीप का राजा बनाया गया कुछ मंत्री हुए शेष प्रजा हुई। इस प्रकार इस द्वीप में राज्य की स्थापना हो गई। इस द्वीप का नाम सिंहल द्वीप इस लिये पड़ा कि इस द्वीप का प्रथम बसाने वाला पुरुष सिंह की सन्तान है। दूसरा जहाज जिसमें सिंह की पुत्री सवार थी फारिस की खाड़ी में चला गया। ईरान वालों ने उसे पकड़ लिया। वहीं उसकी संतति हुई। वहां की स्त्रीयां प्रसिद्ध है। सिंहल दीप के विषय में एक और दंत कथा है। सिंहल एक व्यापारी के लड़के का नाम था। उसके नाम से यह दीप बसाया गया था। प्राचीन काल में यहां बौद्धधर्म का प्रचार नहीं हुवा था। परन्तु तथागत के निर्वाण के एक सौ वर्ष बाद महाराज अशोक के भाई महेन्द्र ने राजपाट त्यागकर सन्यास धारण किया। वह यहां आया और उसने लोगों को बौद्धधर्म का अनुयायी बनाया। अब इस देश में सौ संघाराम है। जिनमें दस सहस्त्र पुजारी रहते हैं। वे सब स्थावीर सम्प्रदाय के अनुयायी है।

इस दीप के राजा के महल के पासही एक मन्दिर है जहां बुद्धदेव का एक दांत रखा हुवा है। इस मन्दिर को खूब सजाया गया

है। इस पर उत्तम चित्रकारी की गई है। इसके शिखर पर एक झंडा लगा हुवा है जिसमें एक पम्दराज नामक जड़ा है।

इस पर सूर्य की किरणें पड़ने से यह बहुत दूर तक प्रकाश देता है। इसके पासही अन्य कई संघाराम हैं। यहां की चित्रकारी भी अवर्णनीय है।

प्राचीन काल में एक मनुष्य ने इस रत्न को चुराने का संकल्प किया। किसी तरह जमीन खोदकर वह उस भवन में पहुंचा। जब उसने रत्न को छुवा; तबही मूर्ति बढ़ने लगी और इतनी बढ़ी कि चोर का हाथ वहां तक न पहुंच सका। चोर निराश होकर वहां से जाने लगा उसने बड़े आश्चर्य से कहा कि बुद्धदेव ने सत्य की खोज में राजपाट सब कुछ त्याग कर दिया था परन्तु मूर्तिमान दशा में उसे इस रत्न से इतना प्रेम है कि वह इसका त्याग नहीं कर सक्ता। सम्भव है कि उसके त्याग का वर्णन कल्पित हो। इतने में मूर्ति ने अपना सिर झुका दिया और अपने हाथ से उस रत्न को चोर के हवाले किया। चोर ने बाहर जाकर उसे बेचना चाहा। परन्तु लोगों ने उस रत्न को पहिचान लिया और उस चोर को पकड़कर राजा के पास ले गये। राजा ने उससे पूछा कि यह रत्न तुम्हारे हाथ कैसे लगा। उसने सब वृतांत सत्य कह दिया। राजा ने मूर्ति को देखा तो सिर झुका हुवा था। उसे चोर के कहने पर विश्वास होगया। उसने वह रत्न लेकर मूर्ति पर लगाया और उसके बदले चोर को बहुत कुछ धन रत्न दान दिया। इसके आग्नेय कोण में लंकागिर है। यहां पर भूत प्रेत और पिशाचों के मानने वाले रहते हैं। तथागत ने यहां लंकावतार सूत्र का उपदेश दिया था। इस पर्वत के दक्षिण में कई सौ मील की दूरी पर नारी कीर द्वीप है। यहां के मनुष्य तीन फुट ऊंचे होते हैं। उनका मुख पक्षियों का सा होता है। हुएनसंग स्वयं सिंहल द्वीप नहीं गया। जो कुछ उसने इस द्वीप के विषय में लिखा वह सब सुना हुवा वृतांत था। द्रविड़ देश से वह वायव्य कोण में ७० पुजारियों के साथ पवित्र स्थानों का तीर्थ करने गया इसके आगे २००० ली की दूरी

कोकनपुर आता है यहां भी १०० संघाराम हैं जिनमें दस हजार पुजारी हैं। इस देश में बहुत से विधर्मी नास्तिक भी रहते हैं जो अन्य देवताओं की और भूत प्रेत की पूजा करते हैं। यहां राजप्रसाद के पासही एक बड़ा संघाराम है जिसमें ३०० पुजारी रहते हैं। ये बड़े विद्वान हैं इस संघाराम में राजकुमार सिद्धार्थ के सिरकी टोपी रखी है जो शुभ तिथियों को निकाली जाती है। लोग उसको प्रणाम करते हैं। इस देश के दक्षिण में भोजपत्र के वृक्षों का एक जंगल है। जिस पर कि प्राचीन काल में धर्म ग्रंथ लिखे जाते थे। इसके आगे घना जंगल मिलता है जहां हिंसक जन्तु रहते हैं।

आगे चलकर **महाराष्ट्र**देश आता है। यहां के लोग बड़े धर्मज्ञ हैं। वे मृत्यु से नहीं डरते और आचार और नीति के बड़े पाबंद हैं। यहां का राजा क्षत्री है। वह सैनिक कार्यों में दक्ष है। यहां के लोग वीर हैं और युद्ध कला भली भांति जानते हैं। यहां पैदल और घोड़े की सेना दोनों ही बहुत है।

यहां चारों ओर वीरता का प्रभुत्व है। जब इस देश का कोई सैनिक युद्ध में हारजाता है तब उसे मृत्युदण्ड नहीं दिया जाता। परन्तु उसे स्त्रियों के कपड़े पहना कर नगर से निकालते हैं। इस प्रकार के दंड यहां के लोग अपमानजनक समझते हैं। वे इससे युद्ध में मरना अच्छा समझते हैं। यहां की सेना में जंगली हाथी भी हैं। युद्ध क्षेत्र में जाने के पूर्व ये लोग हाथी को कुछ नशेली चीज़ खिला देते हैं। जिससे वह मस्त होकर घावों के कष्ट का खयाल न कर शत्रू से खूब लड़ता है। राजा शिलादित्य जिसके पास भी बड़ी भारी सेना है इस देश के राजा (**पुलकसेन**) को परास्त करने के लिये एक सेना ले आया। परन्तु अंत में उसे वापिस हो जाना पड़ा। इस देश में सौ संघराम हैं। उनमें पांच सहस्र पुजारी रहते हैं। जो हीनयान और महायान दोनों सम्प्रदाय के मानने वाले हैं। परन्तु इस देश में बहुत से लोग नास्तिक मत के अनुयायी हैं। नगर के भीतर बाहर पांच स्तूप हैं। ये कई सौ फीट ऊंचे हैं। इनको महाराज अशोक ने बनवाया था। जहां २ ये स्तूप बनाये गये हैं, वहां २ प्राचीन काल में चारों बुद्ध कुछ २ समय तक रहे थे। यहां से चल कर **नैऋत्य** कोण में नर्मदा पार करने पर १००० ली की

दूरी पर **वरोच** देश है। इसके बाद २००० ली की दूरी पर **मालवा** का प्रांत आता है। यहां के लोग धार्मिक और सभ्य हैं। वे हास्य पूर्ण विषयों में भी सिद्धहस्त हैं।

मगध और मालवा दोनों विद्या, साहित्य और कला में प्रसिद्ध हैं। यहां प्रायः १०० संघाराम हैं। इनमें वीस हजार पुजारी रहते हैं। ये सब हनियान पंथ के और समात्य सम्प्रदाय के अनुयायी हैं। यहां पर भी भिन्न भिन्न धर्मों के नास्तिक लोग विद्यमान हैं। वे शरीर पर राख मलते हैं और भूत प्रेतादिक को मानते हैं। हुएनसंग के इस देश में जाने के साठ वर्ष पूर्व इस देश का राज्य शिलादित्य नामक एक राजा के आधीन था। वह वड़ा विद्वान और धार्मिक था। वह मनुष्यत्व, प्रेम और उपकार अथवा उदारता की जीती जागती मूर्ति था। जव तक वह राज्य करता रहा, तव तक उसने अपने मुंह से एक भी वुरा शव्द नहीं निकाला, न कभी उसे क्रोध आया। वह सब के साथ अच्छा वर्ताव रखता था। उसकी रानियां भी उससे प्रसन्न थीं। मंत्री व राजपदाधिकारी सबही उससे प्रसन्न थे। उसने चिउँटी तक को भी कष्ट नहीं दिया। वह हाथी घोड़ों को पिलाने के लिये भी पानी छान कर देता था। और स्वयम् सदा छान कर पानी पीता था। प्राणी मात्र को उसने कष्ट नहीं दिया। इसका अच्छा परिणाम हुआ। हिंसक जन्तुभी मनुष्यों से प्रेम करने लगे। उसके राज्य काल में देश भर में शांति और सुख का विस्तार था। उसने बुद्धदेव की मूर्तियां बनवाईं, मन्दिर बनवाये और धर्म का प्रचार किया। शिलादित्य ने ५० वर्ष तक राज्य किया। अभी तक लोग उसके नाम को प्रेम से लेते हैं। यहां से आगे बढ़ कर २० ली की दूरी पर **ब्राह्मणपुर** है। इस देश के आगे **अट्टाल** देश आता है जहां नाना प्रकार की सुगन्धित वनस्पति होती हैं जिनसे इत्रादिक बनाये जाते हैं। यहां से आगे **कच्छ** देश है। तत्पश्चात् हुएनसंग **वल्लभी** देश में पहुंचा। यहां एक सौ संघाराम हैं। और इनमें छे हजार पुजारी रहते हैं। ये सब हीनयान के अन्तर्गत समात्य सम्प्रदाय के अनुयायी हैं। तथागत अपने जीवित काल में कई वार यहां आये। जहां २ वे ठहरे वहां २ महाराज अशोक ने स्मारक बनवाये हैं। हुएनसंग के समय में यहां एक राजपूत राजा था। वह राजा शिलादित्य का दामाद था। उसका नाम

ध्रुवभद्र था। वह बड़ा धार्मिक और विद्याप्रेमी था। प्रतिवर्ष वह एक धर्म सभा एकत्र करता था जिसमें देश भर के पुजारी और पुरोहित इकट्ठे होते थे। यह सभा सात दिन तक होती थी। राजा पुजारियों को अच्छा दान देता और उनका भली भांति स्वागत करता था। यहां से आगे बढ़ कर और **आनन्दपुर, सुराष्ट्र** और **गुर्जर** देशों में होता हुआ हुएनसंग **उज्जैन** में आया। यहां भी महाराज अशोक के बनाये हुए बहुत से स्मारक मौजूद हैं। राजधानी के पासही अशोक कृत संसारिक नर्क रूपी कारागृह के चिन्ह वर्तमान हैं। आगे चल कर हुएनसंग **लांगल** नगर में आया। इसके उत्तर पश्चिम में **ईरान** का देश और समुद्र है। दोनों की सीमा मिली हुई है। इस नगर में बहुमूल्य रत्न मिलते हैं। रेशम और ऊन की चीजें भी खूब मिलती हैं। ऊंट, मेंढ़े व घोड़े भी बहुत होते हैं। यहां केवल दो तीन संघाराम हैं जिनमें कई सौ पुजारी रहते हैं। ये सब हीनयान मत के सरवस्तवादिन के अनुयायी हैं। पूर्वीय सीमा पर आरमुज का नगर है। और नैऋत्य में वह द्वीप है जहां की स्त्रियां अपने पुत्रों को नहीं पालतीं। यहां से आगे ईशान दिशा में **पिताशिला** राज्य है। यहां एक स्तूप है जिसे महाराज अशोक ने बनवाया था। इस देश के उत्तर पूर्व (ईशान) में **अवांध** देश है। राजधानी के पासही जंगल में एक संघाराम के खंडारात हैं। बुद्धदेव इस देश में आये थे। यहां महाराज अशोक का बनवाया हुआ एक मंदिर है। संघाराम के निकट ही बुद्धदेव की नीलम की एक मूर्ति है जिसमें से सदा प्रकाश निकलता रहता है। जंगल से आगे कुछ मील की दूरी पर एक और संघाराम है। इसे भी महाराज अशोक ने बनवाया था। पूर्व काल में तथागत यहां कुछ समय तक रहे थे। इस देश के पूर्व में ६०० ली के फासले पर **सिंध** देश है। यहां सोना, चांदी, ऊंट, भेड़, बकरी; लाल, सफेद और काला नमक बहुत होता है। काला नमक दवा के काम आता है। तथागत ने अपने जीवन काल में कई बार इस देश की यात्रा की थी। जहां २ वे ठहरे थे वहीं २ महाराज अशोक ने उनकी पवित्र स्मृति को कायम रखने के लिये एक न एक स्मारक बनवा दिया। इस देश में अर्हत उपगुप्त भी आये थे। उनके भी स्मारक यहां वर्तमान हैं। नदी को पार करके हुएनसंग **मुलतान** पहुंचा। यहां के निवासी देवताओं को बलिदान देते हैं और सूर्योपासक हैं। यहां सूर्य

की स्वर्ण की रत्न जटित मूर्ति है। आस पास के लोग तीर्थ के लिये यहां आते हैं यहां सरोवर भी है। और फल फूल भी। (मुलस्थानपुर) मुलतान से हुएनसंग **पर्वत** नगर में पहुंचा। इस नगर के पास ही एक संघाराम है जिसमें सौ पुजारी रहते हैं। वे सब महायान पंथ के अनुयायी हैं। यहां पर ही **जिनपुत्र** ने योगाचार्य्यभूमिशास्त्रकारिका लिखा था। यहां ही **भद्ररुचि शास्त्री** और **गुणप्रभ** शास्त्री नें शिष्य वृत्ति धारण की थी। यहां अच्छे २ विद्वान रहते हैं। हुएनसंग यहां दो वर्ष तक ठहरा रहा और यहीं पर उसने मूलाभिधर्म, सद्धर्म, सम्परिग्रह, प्रशिक्षा सत्यशास्त्र इत्यादि धर्म ग्रन्थों का अध्ययन किया था। यहां से वह दक्षिण पूर्व दिशा से मगध देश होता हुआ नालिंद के विश्वविद्यालय में पुनः वापिस आया। इसके वाद हुएनसंग यशतिवन पर्वत पर चला गया और एक क्षत्री गृहस्थ साधू के पास ठहरा रहा। इस क्षत्री का नाम **जयसेन** था। वह शास्त्रों का ज्ञाता था और स्वयं उसने कई धर्मशास्त्र निर्माण किये थे। वह सुराष्ट्र (काठियावाड़) का निवासी था। उसने वालकपन से ही धर्म का पालन किया था। उसने प्रसिद्ध विद्वान भद्ररूची से शिक्षा पायी थी। स्थितमती बुद्धसत्व से और उसके वाद शीलभद्र से उसने हेतु विद्या शास्त्र, शव्दाविद्याशास्त्र, योगशास्त्र और महायान और हीनयान मत के सब ग्रंथ पढ़े थे। संसारिक विद्याओं में वह वेद ज्योतिष, भूगोल--वैद्यक, गणित और तंत्र का भी प्रचुर विद्वान था। मगध का राजा पूर्णवर्मा इस क्षत्री की वड़ी प्रतिष्ठा करता था। उसने जयसेन को अपनी राजधानी में बुलाकर उसे सब से श्रेष्ठ विद्वान पद पर आभूषित किया। उसकी जीविका के लिये वह वीस गांव की आमदनी देना चाहता था। परन्तु इस विद्वान ने उसे स्वीकार नहीं किया। पूर्णवर्मा की मृत्यु के पश्चात् महाराज शिलादित्य भी उसकी वैसी ही प्रतिष्ठा करते थे। इसने भी इसे सर्व श्रेष्ठ विद्वान के पद पर आभूषित किया। उसके खर्चें के लिये उसे ८० ग्राम मुफ्त देना चाहा, परन्तु उसने उनके लेने से भी इन्कार कर दिया। उसने कहा कि मैं इन झंझटों में पड़ने की अपेक्षा सत्यधर्म के प्रचार में ही लगा रहना चाहता हूं। इसके वाद जयसेन यशतिवन पर्वत पर रहने लगा। और यहां पर धर्म ग्रन्थों की शिक्षा का प्रचार करने लगा। वह बौद्धधर्म के ग्रन्थों को सब को पढ़ कर समझता था। लोग भी उसकी वड़ी प्रतिष्ठा करते

थे। हुएनसंग यहां दो वर्ष ठहरा। और उससे विद्यामात्रसिद्धिशास्त्र पढ़ा और योग और हेतु विद्या शास्त्र के उन प्रश्नों का समाधान कराया जिन पर उसको शंका थी। इस बीच एक रात्रि को हुएनसंग ने स्वप्न देखा कि नालिंद का विश्वविद्यालय उजाड़ होगया है। संघाराम सब नष्ट होगये हैं। उनमें भैंसें बंधीं हैं। पुजारी भाग गये हैं। उसने महाराज बालादित्य के विशालभवन में एक प्रकाशमान मनुष्य को देखा जो एक स्वर्णमय स्तम्भ के शिखर पर बैठा हुआ था। हुएनसंग वहां जाना चाहा परन्तु उसे मार्ग नहीं मिला। उस दिव्य पुरुष ने कहा कि मैं **मंजुश्रीबुद्धसत्व हूं।** अभी तेरे कर्म ऐसे नहीं हैं कि तू मुझ तक आसके। परन्तु तू अब यहां से चला जा क्योंकि **दस वर्ष के बाद शिलादित्य मृत्यु को प्राप्त होगा और उसके पश्चात् भारतवर्ष नष्ट भ्रष्ट होजावेगा !!! और चारों ओर भयानक खून ख़राबी होगी व मनुष्य एक दूसरे को मार डालेंगे।** आंख खुलने पर शोकित-हृदय हुएनसंग जयसेन के पास गया और उसे अपना स्वप्न सुनाया। उसने कहा कि संसार नश्वर है। सम्भव है कि तुम्हारा स्वप्न सत्य निकले। तुम्हारा यहां से जाना न जाना तुम्हारी इच्छा पर निर्भर है। तुम स्वयं अपनी विचार शक्ति से इसका निर्णय कर सक्ते हो। इसके बाद हुएनसंग का एक विद्वान से शास्त्रार्थ हुआ। इसमें हुएनसंग विजयी हुआ। इस देश में पुजारी लोग बहुधा महायान और हीनयान पंथ दोनों की शिक्षा प्राप्त करते हैं, परन्तु वे महायान पर विश्वास नहीं करते। उनका कथन है कि यह बुद्धदेव का बताया हुआ मार्ग नहीं है। परन्तु यह किसी अन्य देश के संसर्ग से मिलकर बना हुआ बुद्धदेव के धर्म का परिवर्तित रूप है। सन ६५६ ई० में पश्चिमीय सिद्धांत के अनुसार लोगों ने गया के संघाराम से बुद्धदेव के शरीर के स्मारक लाये। उसके देखने के लिये और तीर्थ के लिये दूर २ देशों के पुजारी आये थे। हुएनसंग और जयसेन भी अस्थियों को देखने के लिये गये। पूजन के पश्चात उन पर एक मीनार बनवा दी गई। रात्रि को जयसेन हुएनसंग से बुद्धदेव के भिन्न २ शरीरों के विषय में वार्तालाप कर रहा था कि एका एक कमरे का दीपक बुझ गया। एक विचित्र प्रकाश से संपूर्ण भवन जगमगा गया। देखने से मालूम हुआ कि यह प्रकाश उस स्थम्भ से

आरहा था, जिसमें कि बुद्धदेव की अस्थियां रखी हुई हैं। स्तम्भ की चोटी से पांच रंगों का प्रकाश ऊपर को चढ़ता दिखाई दिया। प्रकाश समस्त ओर भूमंडल में फैला हुआ था। वह इतना देदीप्यमान था कि उसके सामने चन्द्रमा और तारागण मन्द हो गये थे। चारों ओर सुवासित सुगंध फैली हुई थी।

यह प्रकाश देखते ही चारों ओर कोलाहल मचगया। सब लोग स्तम्भ के आसपास खड़े होगये। और बुद्धदेव की प्रार्थना करने लगे। धीरे २ प्रकाश कम होते गया और अंत में उस स्तम्भ की परिक्रमा करते हुये वह लोप होगया। चारों ओर पुनः अंधकार छा गया। थोड़ी देर के बाद तारा गण फिर दिखाई देने लगे।

इसके बाद सब ने बौद्धि वृक्ष के दर्शन किये। और एक सप्ताह के बाद सब नालिन्द के विश्वविद्यालय में वापिस आगये। इसी बीच में शीलभद्र शास्त्री ने हुएनसंग से महायान सम्परिग्रह शास्त्र और विद्यामात्र सिद्धिशास्त्र पर उपदेश कराये। इसी अवसर में एक पुजारी **सिंहरश्मि** वहां आया और सब को योगशास्त्र के विरुद्ध उपदेश देने लगा। हुएनसंग ने उसके सिद्धान्तों का भलीभांति खंडन किया। दोनों में शास्त्रार्थ हो पड़ा। परन्तु हुएनसंग जीत गया और सिंहरश्मि अपने शिष्यों के साथ उसका शिष्य बन गया। हुएनसंगने योगशास्त्र पर तीस सहस्त्र श्लोकों में एक ग्रन्थ निर्माण किया। इसका नाम उसने हुई-तिसंग रखा। उसे उसने शीलभद्र की सेवा में अर्पण किया। इस ग्रंथ की शीलभद्र और अन्य विद्वानों ने बड़ी प्रतिष्ठा की। और उसे प्रमाणनीय धर्म ग्रन्थों में सम्मिलित कर लिया। हुएनसंग की विद्वत्ता चारों ओर प्रसिद्ध होगई। धार्मिक सज्जनों ने इसकी स्मृति में नालिन्द में एक बड़ा संघाराम बनवाया। यह नालिन्द विश्वविद्यालय के निकटस्थ है और १०० हाथ ऊंचा है।

इसी अवसर में महाराज शिलादित्य विहार-गंजम को विजय करके उड़ीसा में आये। यहां हीनयान मत प्रचलित है। हाल में ही दक्षिण के एक ब्राह्मण प्रज्ञागुप्त ने महायान पंथ के विरुद्ध एक ग्रन्थ लिखा था। पुजारियों ने यह ग्रन्थ राजा को दिखाया और कहा कि इस पुस्तक के एक शब्द का भी खंडन महायान पंथ वाले नहीं कर सके। महाराज शिलादित्य

ने कहा कि तुम लोग ऐसा न कहो। तुमने अभी महायान का पंडित ही नहीं देखा। यह निश्चय हुआ कि एक सभा एकत्रित हो, जिसमें इस ग्रंथ का निर्णय हो। राजा इस बात पर राजी हो गया। शीलभद्र ने भी नालिन्द से चार विद्वान प्रतिनिधियों के नाम लिख भेजे। परन्तु किसी कारण यह सभा उस समय न हो सकी। इन प्रतिनिधियों में हुएनसंग का भी नाम था। इस समय इस देश में लोकात्यमत के नास्तिक भी थे। उनका एक पुजारी नालिन्द के पुजारियों से शास्त्रार्थ करने आया। उसने ४० प्रश्न लिखकर संघाराम के द्वार पर लगा दिये। और यह घोषणा कर दी कि जो कोई इन प्रश्नों का उत्तर दे सकेगा उसको मैं अपना शीस दान दूंगा। जब किसी ने उन प्रश्नों का उत्तर नहीं दिया तब हुएनसंग ने एक आदमी को भेजा और उससे कह दिया कि वह उन प्रश्नों को पांव से रूंध डाले। जब यह मनुष्य बाहर गया और उसने उन प्रश्नों को पावों से रूंध डाला तब नास्तिक पुजारी ने पूछा कि तू कौन है और तूने ऐसा क्यों किया। उसने कहा कि मैं हुएनसंग का नौकर हूं। शून्यवादी चुप हो रहा। उसे हुएनसंग की योग्यता अच्छी तरह मालूम थी। उसकी हिम्मत शास्त्रार्थ करने की न हुई। परन्तु हुएनसंग ने उसे बुलाया। और शीलभद्र और अन्य पुजारियों के सामने उससे शास्त्रार्थ किया। नास्तिक हार गया और अपना शीस देने को तय्यार हो गया। हुएनसंग ने उत्तर दिया कि हम किसी की जान नहीं लेते। अब तू मेरा नौकर बन कर रह और मेरी आज्ञा का पालन कर। बाद में वह स्वतंत्र कर दिया गया। कुछ दिनों के बाद हुएनसंग ने हीनयान मत के खंडन में एक ग्रंथ लिखा। इसे भी उसने शीलभद्र को समर्पित किया। यह भी सर्व मान्य और प्रमाणनीय ग्रंथ प्रसिद्ध हुआ।

जब हुएनसंग ने नास्तिक ब्राह्मण को मुक्त कर दिया तब वह अपने देश कामरूप को चला गया। वहां उसने अपने राजा कुमार राज से चीनी भिक्षु की विद्वत्ता का वर्णन किया। राजा यह सब वृतांत सुन कर बहुत प्रसन्न हुआ। उसके हृदय में हुएनसंग के बुलाने की

उत्कट इच्छा उत्पन्न हुई।

अध्याय उनचासवां

कुमार-राज और शिलादित्य का निमंत्रण

जब कुमार राज को मालूम हुआ कि चीन देश से एक प्रसिद्ध विद्वान और भिक्षु हुएनसंग भारत वर्ष में आया है तब उसे उसके दर्शन की उत्कट इच्छा उत्पन्न हुई। उसने हुएनसंग के पास एक दूत भेजा। उसके आने के पहिले हुएनसंग के पास एक (जैन) निर्ग्रंथि आया। हुएनसंग को मालूम था कि इस पंथ के अनुयायी ज्योतिष विद्या के अच्छे ज्ञाता होते हैं। उसने निर्ग्रंथि से पूछा कि मैं चीन देश का निवासी हूं अब अपने देश को वापिस जाना चाहता हूं। परन्तु मुझे मालूम नहीं कि मेरे लिये मार्ग सुखकर है या नहीं। मैं यह भी नहीं जानता कि मुझे ठहरना चाहिये या चल देना चाहिये। मुझे अपनी आयु [उमर] का भी ज्ञान नहीं है। इसलिये मैं आप से प्रार्थना करता हूं कि मेरे-जन्म-फल को बतलाकर आप मेरे इस सन्देह को दूर करें।

उस ज्योतिषी ने एक पत्थर के टुकड़े से पृथ्वी पर एक चक्र बनाया। और बतलाया अभी तेरी आयु (अवस्था) के दस वर्ष शेष हैं।

पुनः हुएनसंग ने कहा कि मैं अपने देश को शीघ्र ही वापिस जाना चाहता हूं। मालूम नहीं मुझे सफलता होगी या नहीं।

निर्ग्रंथि ने कहा कि स्वयं शिलादित्य और कुमार राज तुम्हें पहुंचाने के लिये सब प्रबन्ध कर देंगे और तुम बिना किसी दुर्घटना के अपने देश में पहुंच जावेगे।

हुएनसंग ने कहा कि मैंने तो अभी तक इनमें से एक राजा को भी नहीं देखा। भला वे क्यों कर मेरी सहायता करेंगे।

निरग्रंथि ने उत्तर दिया कि कुमारराज ने अपने पास तुम्हें बुलाने के लिये एक दूत भेजा है जो दो तीन दिन में आवेगा। इसी प्रकार शिलादित्य का भी दूत तेरे पास आवेगा। यह कहकर निरग्रंथि वहां से चला गया और हुएनसंग पठन पाठन और मूर्तियों के एकत्रित करने में लग गया।

जब पुजारियों को मालूम हुआ कि वह वापिस जाने वाला है तब तो सब को दुख हुआ। वे कहने लगे, ए महात्मा, तुम यहां से अब न जावो। यद्यपि इस भारत भूमि में बुद्धदेव नहीं रहे, परन्तु उनके स्मारक अभी तक वर्तमान हैं। उनके दर्शन और पूजन से अधिक सुख कहां मिल सक्ता है। चीन भारत वर्ष से अच्छा देश तो है नहीं। वहां बुद्धदेव भी नहीं जन्म लेते। फिर तुम यहां से क्यों जाते हो।

हुएनसंग ने उत्तर दिया कि बुद्धदेव का उद्देश यह है कि जीवमात्र उनके उपदेश से लाभ उठावें। इसलिये जिन्होंने सत्यधर्म को पा लिया है उन्हें चाहिये कि उसका विस्तार करें। चीन में धर्म की प्रतिष्ठा है। राजा और पुजारी दोनों ही सत्य धर्म के अनुयायी हैं। वहां माता पिता प्रेम के स्वरूप हैं। वहां की संतान आज्ञाकारी है। वहां नीति और न्याय की प्रतिष्ठा है। वहां सत्य को श्रेष्ठ स्थान दिया जाता है। सामाजिक नियम भी वहां के बहुत उदार हैं। वहां ज्ञान और विद्या का स्रोत बहता है। वे तीनों लोकों के ज्ञान के उपासक हैं। वे गानविद्या के पंडित हैं। वे महायान पंथ और बौद्धधर्म की हृदय से प्रतिष्ठा करते हैं। उनके आचरण शुद्ध और श्रेष्ठ हैं। इसलिये मैं अपने देश में अवश्य जाऊंगा और वहां इस शुद्ध और श्रेष्ठ धर्म का प्रचार करूंगा।

हुएनसंग कहता है कि जिस प्रकार सूर्य पूर्व से उदय होकर पश्चिम को जाता है उसी प्रकार मैं भारत वर्ष से चीन को जाऊंगा। जिस प्रकार सूर्य अन्धकार को नष्ट करता है उसी प्रकार धर्म ज्ञान वहां के अज्ञानान्धकार को नष्ट करेगा।

जब शीलभद्र को हुएनसंग के वापिस जाने का समाचार मिला तब उसने उससे इस का कारण पूछा। हुएनसंग ने उत्तर दिया कि मैं इस देश की प्रतिष्ठा अवश्य करता हूं क्यों कि यह बुद्धदेव का जन्मस्थान है। परन्तु मेरे देशवासियों के प्रति भी मेरे कुछ कर्तव्य हैं। मैं यहां धर्म ग्रन्थों की खोज में आया था। यह कार्य अब पूरा हो गया है। मैंने यहां के सब तीर्थों के दर्शन किये। अब मैं अपने देश में जाकर अपने देशवासियों में धर्म का प्रचार करूंगा। जिससे कि वे लोग भी लाभ उठावें। बस यही मेरा उद्देश है और इसीलिये मैं यहां से जाना चाहता हूं।

शीलभद्र ने कहा कि तुम्हारे उद्देश को सुन कर मुझे बड़ा हर्ष हुआ। तुम्हारे विचार बुद्धसत्व के समान हैं। मैं आज्ञा देता हूं कि तुम्हारी यात्रा का उचित प्रबंध किया जावे और तुम्हें कोई न रोके।

इसके बाद हुएनसंग अपने स्थान पर चला गया। दो दिन के बाद उसके पास कुमार राज का दूत आया। परन्तु शीलभद्र ने कहला दिया कि हम पहिलेही निश्चय कर चुके हैं कि वह शिलादित्य के पास जावे और वहां हीनयान मत के पंडितों से शास्त्रार्थ करे; और वहां से अपने देश को वापिस चला जावे। इसलिये वह कुमार राज के यहां नहीं जा सक्ता। राजा ने पुनः दूत भेजा कि कृपा करके मेरी प्रार्थना को अस्वीकार न करें वरन कुछ ही दिनों के लिये हुएनसंग को मेरे पास भेज दें।

शीलभद्र ने इस प्रार्थना को भी अस्वीकार किया। इस पर कुमारराज को बड़ा क्रोध आया। उसने हुएनसंग और शीलभद्र के नाम एक पत्र लिखा कि मैं बौद्धधर्म के सिद्धांतों को भली भांति नहीं समझा हूं। हुएनसंग को यहां बुलाने का मेरा यही उद्देश है कि मैं धर्म की प्राप्ति करूं। परन्तु शोक कि तुमने मेरी प्रार्थना अस्वीकार की। क्या तुम सब को अंधकार में ही रखना चाहते हो? यदि तुमने अब भी मेरी प्रार्थना पर ध्यान नहीं दिया तो मुझे नालिन्द के विश्वविद्यालय पर धावा कर के उसे नष्ट कर देना पड़ेगा। शंसक राजा के समान मुझमें भी तुम्हारी संस्थाओं के नष्ट कर देने की शक्ति है। मेरे संकल्प को अटल समझो।

अब तुम स्वयं सोच सक्ते हो कि तुम्हें क्या करना है।

पत्र समाप्त करते ही शीलभद्र ने हुएनसंग से कहा कि कुमार राज कमजोर हृदय का और बंधन-युक्त मनुष्य है। उसके देश में बौद्ध धर्म की इच्छानुसार उन्नति नहीं हुई है। इस लिये वह तुमको बुला रहा है। तुम्हारी कीर्ति सुन कर उसका हृदय तुम्हें देखने को विव्हल हो गया है। तुम बुद्ध के अनुयायियों में इसलिये दीक्षित हुये हो कि संसार की सेवा करो। इस उद्देश की पूर्ति का यह अच्छा अवसर है। यदि राजा का हृदय बौद्ध धर्म को स्वीकार करले तो प्रजा शीघ्रही सत्मार्ग पर आजावेगी। इसलिये तुम वहां जाओ। तुम्हारे वहां न जाने से लोग अज्ञान में पड़े रहेंगे।

हुएनसंग शीलभद्र से विदा होकर कुमारराज के पास आया। राजा ने उसका बड़ी धूमधाम से स्वागत किया। उसका खूब सत्कार किया गया। एक मास हो गया। धर्म की शिक्षा भी दी जाने लगी। इतने में शिलादित्य देश-देशान्तरों को और कंग-अयोध्या को विजय कर के अपनी राजधानी में वापिस आया। जब उसने सुना कि हुएनसंग कुमार राज का अतिथि है तब तो उसे बड़ा आश्चर्य्य हुआ, क्योंकि उसने भी एक दूत उसके बुलाने के लिये भेजा था। उसी समय कुमारराज के यहां दूत भेजा गया। कुमार राज ने उत्तर में कहला भेजा कि राजा मेरा सिर मंगा सक्ता है, परन्तु हुएनसंग को नहीं बुला सक्ता। यह सुन कर शिलादित्य ने फिर दूत भेजा कि अच्छा जाओ राजा का सिर ले आओ।

अब तो कुमार राज घबराया। तीस सहस्त्र नवकाओं में वीस हजार हाथियों की सेना लेकर और हुएनसंग को साथ लिये, वह शिलादित्य की राजधानी की ओर चल दिया। जब वे कजूगिरि देश में आये तब शिलादित्य ने उनके आने का समाचार पाया। वह बड़ा प्रसन्न हुआ और उनसे मिलने के लिये आगे बढ़ा।

यहां शिलादित्य अपने राज्याधिकारियों के साथ हुएनसंग से मिला। उसने हुएनसंग को साष्टांग प्रणाम किया। उठकर उस पर पुष्पवर्षा की। उसने पूंछा मैंने आप को प्रथम बुलाया था आप क्यों नहीं आये। हुएनसंग

ने उत्तर दिया कि मैं शिक्षा प्राप्त करने के लिये आया हूं। जब आप का दूत आया था, तब मैं योगभूमिशास्त्र पढ़ रहा था। इस लिये आप की आज्ञा का पालन न कर सका। फिर उसने पूछा कि क्या आप चीन से आये हैं? वहां के राजा का कुछ हाल बतलावें? हुएनसंग ने कहा हां मैं चीन का निवासी हूं। उसने अपने राजा की बड़ी प्रतिष्ठा की। सभा विसर्जन हुई और महाराज शिलादित्य ने दूसरे दिन आने का वचन दिया।

प्रातः काल ही महाराज शिलादित्य का दूत आया, और हुएनसंग को अपने राजा के महल में ले गया। राजा ने उसका अच्छा स्वागत किया। एक भोज उसके उपलक्ष में दिया। तत्पश्चात उसने हुएनसंग से कहा कि मैं वह शास्त्र देखना चाहता हूं, जिसे आपने हीनयान मत के खंडन में लिखा है। उसने वह पुस्तक उसके हवाले कर दी। राजा उसे देख कर बहुत प्रसन्न हुआ और कहने लगा कि यह बहुत अच्छी पुस्तक है। राजा की बहिन ने जो स्वयं पंडिता थी इसकी बड़ी तारीफ की।

तत्पश्चात महाराज शिलादित्य ने एक **धर्म-महा-सभा** निमंत्रित की जिसमें महायान और हीनयान मत के विद्वान, शास्त्री, ब्राह्मण, निर्ग्रंथि, सब एकत्रित हुये। इनकी संख्या प्रायः ५ हजार थी। इनके सिवाय १८ देशों के राजा भी इस **महासभा** में एकत्रित हुये। उपस्थित पंडितों में से महाराज शिलादित्य ने नालिंद के आये हुऐ महायान पंथ के एक हजार पंडित, पांच सौ भिन्न २ सम्प्रदाय के, और भिन्न २ देश के आये हुऐ प्रायः १००० प्रतिनिधि चुने। उनको उसने शास्त्रार्थ के लिये जो स्थान नियत किया था वहां बिठलाया। शेष दर्शक बाहर बिठलाये गये। इस सभा में महायान और हीनयान सम्प्रदाय दोनों पर अच्छे २ व्याख्यान हुऐ। अर्धरात्रि तक हुएनसंग ने महायान मत की विशेषता पर व्याख्यान दिया और उपस्थित सज्जनों में सब को अवसर दिया कि वे इस धर्म के दोष बतलावें। परन्तु किसी ने कुछ आक्षेप नहीं किया। शिलादित्य और उपस्थित लोग इसके व्याख्यान को सुनकर बड़े प्रसन्न हुऐ और सब विश्राम करने चले गये।

पांच दिन तक इस महासभा के अधिवेषण होते रहे। इनमें हुएनसंग ने हीनयान मत को नीचा दिखाया। इस कारण हीनयान मत के कुछ अनुयाइयों ने इसे मारडालना चाहा। यह बात राजा को मालूम हो गई। उसने यह घोषणा तत्काल ही करादी कि जो कोई हुएनसंग को हाथ भी लगायेगा उसका बध कर दिया जावेगा। जो मनुष्य उसको बुरा कहेगा उसकी ज़बान निकाल ली जावेगी। वह विद्वान पुरुष है। जिन्हें उससे ज्ञान प्राप्त करना हैं उनके लिये यह घोषणा नहीं है। हीनयान मत के अनुयायी निराश हो कर यहां से चल दिये। और बहुत से महायान मत के अनुयायी बन गये।

महाराज शिलादित्य और अठारह राजाओं ने प्रसन्न होकर, हुएनसंग को बहुत कुछ पारितोषक देना चाहा परन्तु उसने न लिया। फिर शिलादित्य ने उसे एक हाथी पर बिठलाया और मंत्री, राजा और अतिथि सब पैदल चले। यह घोषणा प्रकाशित की गई कि यह वह विद्वान है जिसने सत्य धर्म के सत्य सिद्धान्तों को स्थित रखा हुआ है।

हुएनसंग नहीं चाहता था कि उसको किसी प्रकार भी आडम्बर और अभिषेक का पात्र बनाया जावे परन्तु राजाओं ने कहा कि यह हमारे देश की चाल है। हम विद्वानों का आदर करते हैं। अठारह दिन तक हुएनसंग ने धर्मचर्चा की परन्तु किसी ने भी उसका विरोध नहीं किया। चारों ओर उसकी विद्वता की प्रसिद्धि हुई।

शास्त्रार्थ समाप्त होने के बाद उन्नीसवें दिन हुएनसंग मूर्तियों और शास्त्रों को अच्छी तरह से सुरक्षित रख नालिन्द के पुजरियों से सदा के लिये बिदा हुआ। फिर राजा से बिदा मांगने आया परन्तु राजा ने कहा कि मैं हर पांचवे वर्ष बौद्धधर्म की एक महासभा निर्मंत्रित करता हूं जो ७५ दिन तक रहती है। छटी महासभा इस वर्ष होने वाली है। मेरी प्रार्थना है कि आप भी इसमें सम्मिलित हों। हुएनसंग राजा के उत्साह को देख कर राजी हो गया। यह देख राजा को बड़ा हर्ष हुवा।

पच्चीस दिन बाद हुएनसंग के साथ शिलादित्य सेना और जुलूस लिये प्रयाग की ओर रवाना हुवा। यहां पर ही हर पांचवे वर्ष महासभा

होती है। यहां विद्वानों का खासा जमाव था। उनका सब प्रबन्ध राजा की ओर से था। महासभा का कार्य आरंभ हुवा। इसमें भारतवर्ष और उसके आसपास के देशों के राजा भी सम्मिलित थे। विद्वान और राजाओं के सिवाय यहां निर्ग्रंथि (जैन) मतवाले भी थे। निर्धन और अनाथों की संख्या भी बहुत थी। सब मिलाकर पांच लाख आदमी एकत्रित थे। शिलादित्य का डेरा उत्तर में था। दक्षिण के राजा ध्रुवभट्ट का डेरा प्रयाग के पश्चिम में था। कुमार राज पूर्व में ठहरे हुये थे।

प्रातःकाल शिलादित्य, कुमारराज और ध्रुवभट्ट की विशाल सेनायें हाथियों पर सवार हो सभा मंडप के सामने उपस्थित हुईं। प्रथम दिन एक भवन में श्री बुद्धदेव की मूर्ति स्थापित की गई और दान दिया गया। दूसरे दिन आदित्य देव की मूर्ति स्थापित हुई। तीसरे दिन ईश्वर देव (शिव) की मूर्ति की स्थापना हुई। चौथे दिन एक सौ धार्मिक संस्थाओं को सौ २ मुहरें दान दी गईं। उनको एक २ मोती और पुष्प व सुगन्धित वस्तुयें भी दान में मिलीं।

पांचवे दिन ब्राह्मणों को दान देना आरंभ हुआ। यह बीस दिन में समाप्त हुआ। छटे दिन से भिन्न २ प्रकार के नास्तिकों को दान दिया जाने लगा। यह दस दिन में समाप्त हुआ। सातवां दान उन लोगों को दिया गया जो भिन्न २ प्रान्तों से भिक्षा लेने आये थे। इसमें भी दस दिन लगे। आठवां दान निर्धन और अनाथों को दिया गया। यह एक मास में समाप्त हुआ।

इस विधि से ७५ दिन का यह उत्सव समाप्त हुआ। महाराज शिलादित्य सदा इस प्रकार अपने पांच वर्षों का कमाया हुवा धन दान कर दिया करते थे। केवल राज्य के आवश्यकीय खर्च के लिये वे कुछ बचा लेते थे जिससे सेना और रक्षा का व्यय निकल सके। सब कुछ देने के बाद महाराज शिलादित्य ने अपनी बहिन से एक पुराना वस्त्र पहिनने को मांगा और उसको पहिन कर उसने भगवान बुद्धदेव का पूजन किया और प्रार्थना की कि जन्मजन्मान्तरों में भी उसकी यह दान वृत्ति बनी रहे और वह **दशबल** को प्राप्त करे।

इस महासभा के समाप्त होने पर सब लोग अपने २ घर को चले गये। राजा लोग भी अपने २ देश में चले गये। हुएनसंग ने राजा से अपने देश को जाने की आज्ञा मांगी। शिलादित्य ने कहा कि मैं तो आप के द्वारा बौद्धधर्म को दूर २ तक फैलाना चाहता हूं। आप फिर क्यों अपने देश को वापिस जाना चाहते हैं। इस पर हुएनसंग दस दिन और ठहरा रहा। कुमार राज ने कहा कि यदि आप मेरे देश में चल कर रहें तो मैं आप के लिये एक सौ संघाराम बनवा दूं।

जब हुएनसंग को यह मालूम हुवा कि दोनों राजा यह चाहते हैं कि मैं अपने देश को वापिस न जाऊं तब उसे बहुत शोक हुवा। उसने उनसे कहा कि यद्यपि बौद्धधर्म का आविर्भाव भारत-वर्ष में हुआ, परन्तु अब वह दूर २ देशों में भी फैल गया है। चीन देश में उसके मानने वाले बहुत हैं। परन्तु चीन यहां से बहुत दूर है और वहां के निवासी धर्म के यथार्थ स्वरूप को नहीं जानते। मैं केवल धर्मतत्व का ज्ञान प्राप्त करने आया था, ताकि औरों को भी उसका यथार्थ तत्व समझा सकूं। इसलिये अब यहां पर ठहरने में मैं असमर्थ हूं। शास्त्रों की आज्ञा है जो लोगों को धर्म से अनभिज्ञ रखता है वह कई जन्मों तक अंधा होता है। यदि तुम मुझे इस पवित्र कार्य से रोकते हो, तो तुम भी इस दण्ड से नहीं बच सक्ते।

महाराज शिलादित्य ने कहा कि पहिले मेरा यह विश्वास था कि मैं आप को यहां रखकर यहां के लोगों को धर्म का ज्ञान कराऊंगा, परन्तु अब आप के महान् उद्देश को सुनकर मेरी ऐसी इच्छा नहीं रही। मैं आप के मार्ग में विघ्न नहीं डालूंगा। इसलिये आप रहें चाहे न रहें, यह आपकी इच्छा पर निर्भर है। परन्तु इतना बतला दीजिये कि आप किस मार्ग से होकर जाना चाहते हैं। यदि दक्षिण मार्ग से जाना चाहते हैं। तब भी मैं अच्छा प्रबन्ध कर सक्ता हूं।

हुएनसंग ने कहा कि जब मैं भारतवर्ष में आ रहा था, तब

कोचिंग * के राजा ने जो बौद्धधर्मावलम्बी है, मुझ से प्रार्थना की थी कि मैं वापिसी में उसके पास कम से कम तीन मास ठहरूं। मैंने उसे वचन दे दिया था। इसलिये मैं वहां होकर जाऊंगा। इसलिये उत्तर के मार्ग से मुझे जाना होगा। राजा ने उससे पूछा कि यात्रा में किन २ चीजों की आप को जरूरत है? हुएनसंग ने कहा कि मुझे किसी भी चीज़ की जरूरत नहीं है। राजा ने कहा यह तो सम्भव नहीं। खैर, मैं आप का सब प्रवन्ध स्वयं ही कर दूंगा।

शिलादित्य और कुमारराज ने हुएनसंग को वहुत कुछ द्रव्य देना चाहा, परन्तु उसने स्वीकार नहीं किया। केवल एक हारि नामक टोपी लेली। दोनों राजा कई मील तक उसे पहुंचाने गये और प्रेमाश्रु बहाते हुये उन्होंने उसे विदा किया। पुस्तकों और मूर्तियों को ले जाने के लिये एक हाथी और वहुत सा द्रव्य (अर्थात् ३००० मुहरें और १०००० चांदी के सिक्के) उत्तर के राजा उधित्त के पास भिजवा दिया गया। तीन दिन के बाद दोनों राजा फिर उससे मिलने गये और उसको कुछ दूर पहुंचा कर वापिस आये। उन्होंने चार मरहटा सर्दारों को उसकी रक्षा के निमित्त साथ कर दिया। और उत्तर के राजाओं के नाम सफेद कपड़े पर शिलादित्य ने पत्र लिख दिये ताकि वे हुएनसंग को यात्रा में सहायता देवें। प्रयाग को अन्तिम बार नमस्कार कर के हुएनसंग कौशम्भी पहुंचा। यहां वह दो मास ठहरा रहा।

यहां से वह राजा उधित्त के साथ **वीरासन** देश में पहुंचा। तदंतर वह जालन्धर पहुंचा। यहां राजधानी है। यहां वह एक मास ठहरा। वहां से बीस दिन की यात्रा के बाद **सिंहपुर** पहुंचा। यहां से वह **तक्षशिला** आया। इस देश के ईशान कोण में पचास योजन पर काशमीर देश है। हुएनसंग को वहां के राजा ने बुलाया परन्तु वह वहां न पहुंच सका। वह सिन्धु नदी पर पहुंचा। यह नदी ५-६ ली चौड़ी है। मूर्तियों और शास्त्रों को तो उसने अपने साथी यत्रियों के साथ नाव पर बैठा कर रवाना कराया व स्वयं हाथी पर बैठ कर उसने सिन्धु नदी को पार किया। उसने एक आदमी

---

* देखो पृष्ठ ८५

को नाव की रक्षा के लिये नियत करके भेजा था। हुएनसंग अपने साथ हिन्दुस्थानी फूलों के बीज भी लिये जा रहा था। जब कि नाव बीच धारा में पहुंची तो बड़ी आंधी आई। पानी नाव में भरने लगा। धर्मशास्त्रों को बचाने के लिये यात्री पानी में कूद पड़े। बहुत प्रयत्न करने पर भी पचास हस्त लिखित प्रतियां भारत के द्वारपाल सिंधु नदी के कक्ष में पहुंच गई। बाकी की सब बचा ली गई। उसको पार करके वह कापिसा देश में आया। वहां के राजा के पास कुछ दिन ठहर कर वह हर्णी नगर में पहुंचा। वहां से आगे **अवाकाण** होता हुआ वह उत्तर पश्चिम दिशा में स्थित **त्साऊकूट** नगर में पहुंचा। आगे चलकर वह **क्रोसापाम** देश में गया। वहां के राजा ने उसके साथ कुछ सैनिक रक्षा के लिये दिये। वह एक बर्फीली पहाड़ी को तय करके रात दिन की यात्रा के बाद एक ऊंचे शिखर पर पहुंचा। यहां की यात्रा अत्यन्त कठिन थी। यहां घोड़े की सवारी काम नहीं देती। इसलिये उसे पैदल चलना पड़ा। सात दिन की निरंतर यात्रा के बाद वह एक ऊंचे पहाड़ पर पहुंचा, जहां एक गांव सौ घर का बसा हुआ है। यहां हुएनसंग दिन भर ठहरा। और रात्रि को पथदर्शक को साथ लेकर वह पहाड़ी की तराई में पहुंच गया। यहां हरियाली का चिन्ह भी नहीं था। मार्ग भयानक और कठिन था। आगे चल कर एक घना जंगल मिलता है। कई मील की कठिन यात्रा समाप्त करके वह मैदान में आया।

पांच छः दिन की यात्रा करके वह **अन्दराव** देश में पहुंचा। यह प्राचीन **तुखारा** नगर का राज्य है। यहां पर तीन संघाराम हैं जिनमें बहुत से पुजारी रहते हैं पास ही एक विशाल स्तम्भ है जिसे महाराज अशोक ने बनवाया था। यहां हुएनसंग पांच दिन ठहरा।

आगे वह पहाड़ों पर से उतरता हुआ **खासगर** नगर में पहुंचा। वहां से ईशान दिशा में यात्रा करता हुआ वह **कुन्दज** पहुंचा जो सीहून (आक्सस) पर आबाद है। यहां वह एक मास ठहरा। और यात्रा की सामग्री को ठीक किया। यहां के राजा ने उसके साथ व्यापारियों का एक काफला कर दिया उनके साथ वह मुंजान पहुंचा। वहां से **हिमातल** देश

में आया। इस देश के निवासी तुर्कों के समान रहते हैं। इस जगह व्याही स्त्रियां अपने सिर में एक सींघ का टुकड़ा बांधती हैं—जिससे अनुमान किया जाता है कि इनके पति के मा बाप दोनों जीवित हैं। जब इनमें से एक मर जाता है तब सींघ का एक भाग उतार दिया जाता है। यहां से पूर्व की ओर **बदख्शां** देश है। बरफ और पाले के कारण उसे यहां एक मास से कुछ अधिक ठहरना पड़ा। इसके आगे वह **यमगान** व **कुरान** होते हुए **तमसाथिति** नगर में पहुंचा। यहां उम्दह घोड़े होते हैं जो कदमें छोटे रहते हैं। यहां के मनुष्य विषय वासना के दास हैं और अय्याश हैं। यहां भी बौद्धधर्म के दस संघाराम हैं। यहां राजधानी में बुद्धदेव की पत्थर की एक मूर्ति है जिस पर सोने का पानी चढ़ा हुआ है।

इस स्थान से आगे होकर हुएनसंग शिखनान और शम्भी देश में होता हुआ **पामीर** की तराई में पहुंचा। यहां बहुत बरफ गिरता है और हरियाली नहीं होती है। पास ही में एक नदी सीता नाम की है। **यहां के राजा अपने को चीन के देवताओं के वंशज (चिनदेव-गोत्र) बतलाते हैं।** यहां भी एक संघाराम है, जिसका बनाने वाला कुमारजीव (कुमारलब्ध) था। वह तक्षिला का रहने वाला था। वह विद्वान और धार्मिक था। वह अध्यात्मजविन व्यतति करता था। उसने बहुत से शास्त्र लिखे थे। वह सौतांत्रिक संप्रदाय का प्रथम आचार्य्य हुआ। इसी समय **अश्वघोष** पूर्व में **देव** दक्षिण में **नागार्जुन** पश्चिम में और **कुमार-जीव** उत्तर में बुद्धदेव के चार जीवित आचार्य्य वर्तमान थे।

यहां से चलकर और पांच दिन की यात्रा के बाद हुएनसंग का सामना डाकुओं से हुआ। वह बहुत डरा। उसके साथ अन्य आदमी और थे। वे भी बहुत डरे। हाथी डरके मारे नदी में गिर गये। परन्तु डाकुओं ने इन्हें तंग नहीं किया। यहां से आगे बढ़कर वह एक बर्फानी पहाड़ी पर पहुंचा। यहां भी एक स्तम्भ है। एक कथा प्रसिद्ध है कि कई सौ वर्ष पूर्व, बिजली की गर्ज से पहाड़ का एक भाग फूट गया। उसकी दरार में एक विशाल और तेजस्वी भिक्षु दिखाई दिया। वह ध्यान मग्न था उसके बाल मुख और कंधों तक लटकते थे। लकड़हारों ने राजा से सब समाचार कहा।

राजा उसको देखने गया और बहुत से आदमी वहां गये। सवों ने इसे प्रणाम किया। राजा ने पूछा कि यह कौन मनुष्य है ? लोगों ने कहा कि यह एक अर्हत है। वह सब वासनाओं को त्याग चुका है। राजा ने कहा कि उसे किसी तरह जगाना चाहिये। एक आदमी ने उत्तर दिया कि जिस मनुष्य ने वर्षों अन्न जल कुछ नहीं खाया हो, एक दम जगाने से उसका शरीर राख हो जायेगा। प्रथम उसके शरीर में मक्खन मला जावे। जब उसके अंग नरम हो जावें तब घंटा बजाया जावे, जिसकी आवाज सुनकर वह जग जावेगा। ऐसा ही किया गया। तत्पश्चात अर्हत ने नेत्र खोल दिये। पूछा कि तुम कौन हो जो धार्मिक वस्त्र पहिने हुये हो। लोगों ने कहा कि हम भिक्षु हैं। उसने फिर पूछा कि मेरे गुरू काश्यप तथागत कहां हैं ? लोगों ने कहा वे निर्वाण को प्राप्त हो गये। यह सुनकर उसे बड़ा हर्ष हुआ। फिर उसने अपने नेत्र बंद किये और अपनी जटा सम्हाल कर वह अपनी जगह से उठा और आकाश की ओर चढ़ने लगा। शरीर को उसने जमीन पर छोड़ दिया और योगबल से अग्नि प्रदीप्त कर उसे वहीं भस्म कर दिया।

राजा और उसके साथियों ने उस अर्हत की राख को पृथ्वी में गाड़ा और उस पर एक स्तम्भ बनवादिया।

यहां से उत्तर की ओर चलकर वह **काशगर** पहुंचा। वहां से **यारकांग** गया। यहां पर तीन अर्हत एक पहाड़ की गुफा में रहते हैं। वे सब समाधिस्थ हैं। उनके सिर और दाढ़ी के बाल इतने बढ़ जाते हैं कि दूसरे लोग आकर उन्हें काटते हैं। यहां से चलकर हुएनसंग **खोतान** में पहुंचा। यहां की जमीन बहुत उपजाऊ है। अनाज की अपेक्षा संगमूसा का कीमती पत्थर यहां बहुत मिलता है। लोग सूती रेशमी और ऊनी कपड़े व्यापार के हेतु बनाते हैं। यहां की ऋतु भी अच्छी है। लोग सभ्य हैं और धर्म के पाबन्द हैं। वे गान-विद्या के भी प्रेमी हैं। सत्यवादी और आचारवान पुरुष हैं। सब ही प्रायः बौद्धधर्मावलम्बी हैं। यहां सौ संघाराम हैं। इनमें प्रायः पांच हजार पुजारी रहते हैं। वे सब महायान पंथ के अनुयायी हैं। राजा भी धार्मिक और सभ्य है। युद्ध कौशल में वह दक्ष है। विद्वानों की बड़ी इज्जत करता है। **वह महाराज अशोक के पुत्र के**

वंश में से है जो इस देश का प्राचीन काल में राजा था।

इस देश में पहिले बौद्धधर्म का प्रचार नहीं था। काश्मीर के एक अर्हत ने आकर यहां इस धर्म का प्रचार किया। अर्हत यहां तपस्या करने आया था। लोग उसको देख कर बहुत डरे और राजा से जाकर सब हाल बतलाया। राजा ने आकर उस अर्हत के दर्शन किये। उससे राजा ने पूछा तुम एकांत में इतने अधिक प्रसन्न क्यों रहते हो? उसने कहा कि मैं तथागत का शिष्य हूं। उसकी शिक्षा से मैं जंगल में भी प्रसन्न रह सक्ता हूं। राजा ने पूछा कि तथागत कौन था? अर्हत ने उत्तर दिया कि तथागत श्री बुद्धदेव का नाम है। वह एक राज पुत्र था। वह दया का समुद्र था। संसार के कष्टों और मनुष्यों के दुःखों को देख कर उसने अपना राजपाट त्याग दिया। धन, मित्र, पुत्र, स्त्री, मान्य, कुटुम्बी सब का त्याग किया। जीवन के झूठे सुखों पर उसने लात मारी और एकांत सेवन करते हुए सत्य को पाया। उस दिन से वह बुद्ध हो गया। इस ज्ञान की प्राप्ति में उसे ६ वर्ष लगे। ज्ञान प्राप्त करने पर उसने उसे चारों ओर फैलाया। ८० वर्ष की अवस्था तक वह धर्म का प्रचार करता रहा। शरीर छोड़ने के उपरान्त उसका निर्वाण हो गया। जिस किसी को मुक्ति और शान्ति की अभिलाषा है उसे चाहिये कि बुद्धदेव के बतलाये हुए मार्ग का अनुकरण करे। राजा ने कहा मेरे पापों का एक समूह बन गया है। मुझे उनसे छुटकारा नहीं मिल सक्ता। इस लिये मैं तुम्हारी बातों को अच्छी तरह नहीं समझ सका। परन्तु मैं उनके समझने का अभिलाषी हूं। क्या मैं भी श्री बुद्धदेव का पूजन और उनके नियम का पालन कर सकता हूं? उसने उत्तर दिया कि हां आप भी उनके बताये हुए मार्ग का पालन कर सक्ते हैं। वह तो प्राणिमात्र के लिये एक समान मार्ग है। राजा उस अर्हत पर विश्वास करने लगा। अर्हत देव से प्रार्थना की कि वह लोगों में बुद्धदेव के धर्म का प्रचार करे।

यहां से हुएनसंग ने कोचिंग के राजा के पास यह समाचार भिजवाया कि मैं भारतवर्ष से वापिस हो कर शीघ्र ही तुम्हारे पास आना चाहता हूं। जब दूत वहां पहुंचा तो राजा को बड़ा हर्ष हुआ।

इधर इतने दिनों हुएनसंग खोतिन के लोगों को धर्मोपदेश देता रहा।

हुएनसंग ने यात्रा की तय्यारी की और खोतिन के राजा ने उसकी सामग्री एकत्रित कर दी। यहां से रवाना हो कर वह पेमा नगर में पहुंचा। यहां पर बुद्धदेव की उंचाई के बराबर एक मूर्ति रखी है। इसके विषय में यहां बहुत से चमत्कार प्रसिद्ध हैं। यह मूर्ति अत्यन्त प्राचीन है। कोशम्भी के राजा ने इसे बनवाया था।

पेमा से रवाना हो कर वह कोचिंग पहुंचा। यहां वह राजा का अतिथि रहा। उसने अपनी यात्रा का सविस्तर वर्णन किया व प्रजा को धर्मोपदेश दिया। यहां से वह नामू पहुंचा। वहां से ल्यूचांग हो कर वह चीन की सीमा पर पहुंचा। यहां से उसने अपने पथ प्रदर्शकों को वापिस किया। आगे बढ़ता हुआ वह शान्चू पहुंचा और चीन के साम्राट को अपने वापिस आने की सूचना दी। सूचना मिलते ही साम्राट ने लियांग के गवर्नर को आज्ञा दी कि बहुत से राज्यपदाधिकारियों को भेज कर वह हुएनसंग का स्वागत करे और उसे मेरे पास लावे।

अध्याय पचासवां

अंत

राज्या धिकारी हुएनसंग को सन ६४५ ईस्वी में पश्चिमीय चीन की राजधानी में ले गये। दूसरे ही दिन बहुत से पुजारियों ने आकर उसका स्वागत किया। और उसे हांग-फू के विहार में ले गये। यहां पर उसने पुजारियों को निम्न लिखित वस्तुयें प्रदान की जिन्हें वह भारतवर्ष से लाया था।

(१) तथागत के शरीर के एक सौ पंचास स्मारक (२) एक सुनहरी मूर्ति। उस मूर्ति के साथ ३ फीट तनि इंच ऊंचा एक सिंहासन.

था। (३) बुद्ध देव की एक चन्दन की मूर्ति। इसके साथ ३ फीट पांच इंच ऊंचा एक सिंहासन था। यह उस मूर्ति के आधार पर बनाई गई थी, जिसे कौशम्भी के राजा उदायन ने बनवाया था। (४) बुद्धदेव की एक मूर्ति जिसका सिंहासन दो फीट नौ इंच ऊंचा था। (५) बुद्ध देव की एक चांदी की मूर्ति; एक सिंहासन सहित जो चार फीट ऊंचा था। यह मूर्ति उस अवस्था को दर्शाती है जब बुद्ध देव गिरधर पर्वत पर लोगों को सद्धर्मपुण्डरीक और सूत्रों की कथा सुना रहे थे। (६) बुद्ध-देव की मूर्ति एक पांच फीट ऊंचे सिंहासन समेत। यह मूर्ति उस समय का भाव दर्शाती है जब कि नगरहारे में बुद्धदेव ने मार को वश में किया था। (७) एक फुट तीन इंच ऊंचे सिंहासन सहित बुद्धदेव की एक चन्दन की मूर्ति जो उस समय की दशा की सूचक है जब बुद्धदेव वैशाली के आसपास लोगों को धर्मोपदेश दे रहे थे।

मूर्तियां के सिवाय बहुत से धार्मिक ग्रन्थ वह भारतवर्ष से लाया था। उन सब पुस्तकों को भी उसने संघाराम में रखा दी। उनमें निम्न लिखित ग्रन्थ थे :—(१) २२४ सूत्र (२) १९२ शास्त्र (३) स्थाविर पंथ की १५ पुस्तकें (८) समात्य पंथ की १५ पुस्तकें जिनमें सूत्र और विनय भी थे (५) महीशासक पंथ के २२ ग्रन्थ (६) सर्वस्तवादिन पंथ की ६७ पुस्तकें (७) काश्यप पंथ की १७ पुस्तकें (८) ४२ पुस्तकें धर्म गुप्त पंथ की (९) १३ पुस्तकें शब्द-विद्या-शास्त्र की। सब मिलाकर ६५७ पुस्तकें भिन्न २ धर्मों की और विविध २ विषयों की वह भारतवर्ष से बीस घोड़ों पर रखा कर लाया था।

जब हुएनसंग पश्चिमीय राजधानी के बड़े २ पदाधिकारियों से मिल चुका, तब वह लू-यांग को रवाना हुआ। यहां चीन का साम्राट ठहरा हुआ था। जब वह उसके सामने उपस्थित हुआ, तब साम्राट ने पूंछा कि तुम मेरी आज्ञा के बिना भारतवर्ष को क्यों गये। हुएनसंग ने उत्तर दिया कि मैंने तीन बार आज्ञा मांगी परन्तु मुझे कुछ भी उत्तर नहीं मिला इस लिये मैं चला गया। तत्पश्चात् हुएनसंग

और साम्राट में विविध विषयों पर वार्तालाप हुआ। राजा ने उसे कोई राज्यपद स्वीकार करने को कहा, परन्तु उसने इन्कार कर दिया। वहां से वह हांग-फू के संघाराम में चला गया। यहां उसने धर्म पुस्तकों का अनुवाद करना आरम्भ किया। सन ६४७ के अंत में उसने बौद्धिसत्वापितक सूत्र, बुद्धभूमिसूत्र, शतमुखीधारणी आदि ग्रन्थों का अनुवाद पूर्ण किया। सन ६४८ ईस्वी में वह ५८ पुस्तकों का अनुवाद सम्पूर्ण कर चुका था। सन ६५० में चीन के साम्राट तायेतसंग की मृत्यु हो गई। इसके बाद जीवन पर्य्यंत उसने धर्म ग्रन्थों के लिखने और प्रकाशित करने का काम जारी रखा। चार घंटे तक वह व्याख्यान देता था। शेष समय धर्म ग्रन्थों के लिखने और अनुवाद करने में व्यतीत करता था। ६५२ ईस्वी में उसने हांग-फू के संघाराम के दक्षिण के फाटक पर एक पांच मंजिला मनिार बनवाया जो कि १८० फीट ऊंचा था। इसकी बनावट भारतवर्ष के मीनारों के समान थी। इस मीनार में उसने धर्म-पुस्तकें और बुद्धदेव की मूर्तियां रखवा दीं। सब से ऊंचे मन्जिल पर दो भूमिकायें जो हुएनसंग के अनुवाद पर चीन के साम्रट तायेतसंग और उसके पुत्र-राजकुमार कावसंग ने लिखा था रखी गईं।

सन ६५४ ईस्वी में मध्य भारत के बोद्धि-संघाराम से हुएनसंग के नाम कुछ भिक्षुकों ने मानपत्र भेजा। उसके उत्तर में हुएनसंग ने कहा कि मेरी बहुतसी पुस्तकें सिंधुनदी में डूब गईं। लोगों को चाहिये कि उन ग्रन्थों को भारतवर्ष से यहां लाने का प्रयत्न करें।

सन ६५५ ईस्वी में हुएनसंग बीमार रहा, परन्तु राज्य-वैद्यों की चिकित्सा से वह अच्छा हो गया। सन ६५८ ईस्वी में वह लूयांग से पश्चिमीय राजधानी को चला गया। वहां समंग नामक एक नये मन्दिर में रहने लगा। यहां पर भी वह निरन्तर अनुवाद करता रहा। परन्तु अब वह बहुत वृद्ध हो गया था। उसकी शक्ति भी प्रायः सब खर्च हो चुकी थी। उसे सन्देह हुआ कि शायद वह प्रज्ञापारमिता का अनुवाद न कर सके। उसने राजा से कहा कि उसे वह यूह-फा-प्रसाद में रहने

दे, जहां वह शान्ति पूर्वक अपना काम करता रहे। यह प्रार्थना स्वीकृत हुई और वहां वह चला गया।

सन ६६० ईस्वी में उसने प्रज्ञापारमिता सूत्र का संक्षिप्त चीनी-अनुवाद शुरू करना चाहा परन्तु स्वप्न में उसे यह आज्ञा हुई कि वह इस काम को न करे। अब वह पैंसठ वर्ष की अवस्था प्राप्त कर चुका था। उसे मालूम हो गया कि उसका अंत काल आगया है। इसलिये वह प्रज्ञासूत्र के सम्पूर्ण अनुवाद के कार्य में लगा रहा। सन ६६१ ईस्वी में उसने इस सूत्र का अनुवाद ६०० अध्याय और १०२ भागों में समाप्त किया। वह रत्नकूट सूत्र का अनुवाद करने में असमर्थ रहा। अपनी मृत्यु की राह देखने लगा।

इस समय तक वह ७४ पुस्तकों का अनुवाद कर चुका था। यह वृहत्-ग्रंथ-संग्रह १३३५ अध्यायों में समाप्त हुआ था। वह चित्रकार भी अच्छा था। उसने वहुत से चित्र वनाये। वहुत से सूत्रों की कापी अपने हाथों से की। जव वह अपने सव अनुवादों को दूसरों को सुना चुका तव उसने अपने नेत्र मूंद लिये और शांतिपूर्वक पृथ्वी पर लेट गया। तुरियावस्था की और प्रभु मैत्रेय की प्रतिष्टा में वह कुछ श्लोक पढ़ने लगा। यहां तक कि उसको समाधि की दशा प्राप्त हो गई। ६६४ ईस्वी के अक्टोवर मास की तेरव्हीं तारीख को उसकी शिक्षाप्रद संसार-यात्रा समाप्त हो गई। उसकी समाधि पश्चिमीय राजधानी में वनाई गई। परन्तु सन ६६९ ईस्वी में चीन के साम्राट की आज्ञा से उसका शरीर वहां से निकलवाकर, फानचून के रमणीक स्थान में लाया गया। यहां उसकी समाधि वनाई गई और उसकी पवित्र स्मृति में उस समाधि पर एक विशाल स्थम्भ निर्माण किया गया।

मरना भला है उनका जो अपने लिये जियें॥
ज़िन्दह हैं वे जो मर चुके इन्सान के लिये॥

समाप्त.

शुद्धिपत्र

पृष्ठ.	पंक्ति.	अशुद्ध.	शुद्ध.
२	३	द्रष्टिगोचर.	दृष्टिगोचर.
३	१	खोतान.	खोतीन.
५	२	वौद्धधर्मवलम्वीय.	बौद्धधर्म्मावलम्बी.
६	६	मंडम.	मंडप.
७	१०	पच्चास.	पचास.
,,	१४	रमणाय.	रमणीय.
८	४	धर्मनुयायी.	धर्मानुयायी.
,,	५	साधू रहते.	साधु रहते हैं.
,,	१३	कीं.	को
,,	१३	भला.	भली.
११	१	अज्ञदहे.	अजदहे.
१३	१४	हैं.	है.
,,	१८	ऋत.	ऋतु.
१४	१४	कल्यानार्थ	कल्याणार्थ.
१६	१६	का.	को.
,,	२४	मध्यान्य.	मध्यान्ह.
,,	,,	सिंहासिन.	सिंहासन.
,,	८	में.	मैं.
,,	,,	गें.	में.
,,	१४	राजघानी.	राजधानी.
१०	४	के.	की.
,,	,,	तदुपरात.	तदुपरान्त.
,,	२२	भाविष्य.	भविष्य-
,,	२४	अंर्हत.	अर्हत.
२०	२	स्थिति.	स्थित.
,,	६	में.	मैं.
२१	,,	प्रथवी.	पृथ्वी.
२१	,,	के.	वहाँ के.
,,	८	अवश्यसकतायें.	आवश्यकताएँ.
,,	,,	ऊंच.	ऊँचे.
,,	१९	न.	नहीं.
२३	२	कानन.	कानून.
२५	१९	स्थम्ब.	स्थम्भ.
,,	१९	जविन.	जीवन.
,,	१७	फैलवे.	फैलावें.
,,	२५	माधक.	मादक.
,,	२७	उलघंन.	उल्लघंन.
२८	२	म.	में.
,,	,,	जांवन.	जीवन.
२९	४	हनियान.	हीनयान.
,,	१९	चारों बुद्धो.	चारों बुद्धों.
३०	३	होगें.	होंगे.
,,	१५	अपर.	ऊपर.
३१	१	आदरनीय	आदरणीय.
३४	,,	छौड़.	छोड़.
,,	१४	मान्य.	मान.
३५	११	हदय.	हृदय.
,,	४	निकाल.	निकाली.
,,	,,	महा प्रजाति.	महाप्रजापति.
,,	२३	निवाण करतें.	निवारण करते.
,,	,,	अजाके.	अशोक.
३७	१२	में.	मैं.
३९	४	कहां.	कहा.
,,	१०	यश श्वी.	यशस्वी.
,,	१७	अस्स्वाभाणिक	अस्वाभाविक.
,,	२३	पुत्रौं	पुत्रों

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
,,	२५	मुणि.	मुनि.
,,	२६	स्मृत में.	स्मृति में.
,,	२८	जीवित.	जीवित.
४०	२	होउंगा.	होऊंगा.
,,	२१	चिहं.	चिन्ह.
,,	,,	स्वरुप.	स्वरूप.
४२	१०	देश.	देशों.
४३	१	महां अशोक.	महाराज अशोक.
,,	१८	साम्प्रदाय.	सम्प्रदाय.
४४	१५	इसे.	यह.
४५	१	धंनवांन.	धनवान.
,,	३	सूश्रुपा.	सूश्रुपा.
,,	१७	वसया.	वसाया
,,	,,	उसमे.	उसमें.
४६	७	प्रथ्वी	पृथ्वी.
,,	१२	गिघ.	गिद्ध.
,,	१६	गिद्य.	गिद्ध.
,,	९	पदमासन.	पद्मासन.
,,	१५	प्रथ्वी.	पृथ्वी.
,,	,,	हुऐ.	हुए.
,,	२४	परिक्मा.	परिक्रमा.
,,	४	प्रथ्वी.	पृथ्वी.
५४	२५	दर्शण.	दर्शन.
५५	९	नीजे	नीचे.
,,	१०	मड़कों.	मड़के.
५६	२	दर्शण.	दर्शन.
,,	५	इ.	इस.
,,	५	अवलम्बण.	अवलम्बन.
,,	२५	साम्प्रदाय.	सम्प्रदा
५८	१८	सवारामं.	संवाराम
,,	,,	सदेव.	सदैव.
,,	,,	अहत.	अर्हत.
,,	,,	लौग.	लोग.
५९	४	और.	ओर.
,,	२१	साम्प्रदायों.	सम्प्र
६०	३	साम्प्रदाय.	सम्प्रद
,,	४	जनत.	जनता
,,	१५	हा.	ही.
६२	२४	कष्ठ.	कष्ट.
,,	२५	दर्पण.	दर्शन.
,,	२६	मात्रभूमि.	मातृभूमि
६२	,,	दर्शण.	दर्शन.
६३	१	आसू	आंसू.
६४	११	निर्मण.	निर्माण
,,	२५	निकलकर.	निकालक
,,	२७	आस्ति.	आस्थि.
६६	१४	अहर्त.	अर्हत.
६७	१	दलवद्द.	दलवद्ध
,,	२२	हस्तक्षप.	अस्तक्षेप
,,	२७	जावगा.	जावेगा.
६८	१९	पृवत्त होंवे.	प्रवृत्त होवें
७१	७	दशा.	दिशा.
७७	५	नियर्मत.	नियमित.
७८	१३	मान्य.	मान.
७९	८	हुऐनसंग.	हुएनसंग
,,	२५	है.	हैं.

अशुद्ध	शुद्ध
इसफे.	इसके.
न.	ने
हनियान.	हीनयान.
दर्शण.	दर्शन.
प्रथ्वी	पृथ्वी.
बार.	बाद.
निर्मण.	निर्म्माण.
कहां	कहा.
हिउनसंग.	हुएनसंग.
स्त्रास्त्र.	शास्त्र.
बृम्ह.	ब्रह्म.
अयेध्या.	अयोध्या.
लगीं.	लगी.
सिरं.	सिर.
क्रत्य.	कृत्य.
कष्ठों.	कष्टों.
करमों.	कर्मों.
कें.	के
पप्थर.	पत्थर.
ग्रहस्थ.	गृहस्थ.
शास्त्र.	शास्त्र.
सम्प्रदाक.	सम्प्रदाय.
भिक्त.	भिक्षु.
कापिलवस्तु.	कपिलवस्तु.
निकालता.	निकलता.
पुजादिक.	पूजादिक.
वशली.	वैशाली.
धरमोंददश.	धर्मोपदेश.

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१०८	११	छ.	छह.
,,	१७	खडरान.	खंडरात.
,,	२५	बार्च.	बीच.
,,	२६	एक हीरे.	× × ×
,,	४	वर्ष.	वर्ष बाद.
,,	११	छ.	छह.
,,	१७	खडरान.	खंडरात.
,,	२५	बार्च.	बीच.
,,	२६	एक हीरे.	×××
,,	४	वर्ष.	वर्ष बाद.
१०९	२१	बुद्‌भद्र.	बुद्धभद्र.
११०	७	जन्म.	जन्म.
,,	१८	है.	हैं.
,,	२६	सहानुमूर्ति.	सहानुभूति.
,,	२७	पठन.	पढ़ने.
११२	६	हुऐ.	हुए.
,,	२०	पर.	पर.
,,	२७	लिये.	लिए.
११३	१२	बैद्य.	वैद्य.
,,	१६	बनस्पति.	वनस्पति.
,,	२६	प्रथ्वी.	पृथ्वी
,,	२७	प्रथ्वी.	पृथ्वी.
११४	१	वाग.	बाग.
,,	१६	प्रवित्र.	पवित्र.
११५	१३	यद्यापि.	यद्यपि.
,,	१६	आवदी.	आबादी.
,,	२४	राजग्रही.	राजगृही.
११६	२७	हँस्तरेहा.	हँस्…

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
११७	२२	निवासी.	निवासी.
,,	१०	वना.	वना.
११८	१२	है.	हैं.
१२०	१	हिरणय.	हिरण्य.
,,	२८	श्रीक्षेत.	श्रीक्षेत्र.
१२२	७	प्रतिष्ठा.	प्रतिष्ठा.
,,	११	यही.	यहीं.
,,	२२	दीप.	द्वीप.
१२७	१०	महाराष्ट.	महाराष्ट्र.
१२६	२	पम्दराज.	पद्मराज.
,,	२	नामक जड़ा है.	नामक हीरा जड़ा
,,	६	संकल्प.	संकल्प.

नोट:—हमारे कृपालु पाठक भूलों के लिये क्षमा करेंगे। वे बहुत शीघ्र दूसरे संस्करण निकाल दी जावेंगी।